महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

वर्ष : ६१ **अंक** : १३

दयानन्दाब्द: १९५

विक्रम संवत्: आषाढ़ कृष्ण २०७६

कलि संवत्: ५१२०

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२०

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-३०० रु.

पाँच वर्ष-१२०० रु.

आजीवन -३००० रु.

एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर

द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर

त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर

आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.

एक प्रति - ३ पाउण्ड

एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२११७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

जुलाई प्रथम २०१९

अनुक्रम

०१. द्रविड़ समुदाय में व्याप्त अनार्यत्व...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-३२	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. गायत्री	स्वामी समर्पणानन्द	१४
०५. वैदिककालीन शिक्षा की वर्तमान...	जगदेव विद्यालङ्कार	१६
०६. शङ्का समाधान- ५१	डॉ. वेदपाल	१९
०७. हे प्रभु! परम ऐश्वर्य दो	प्रकाश चौधरी	२१
०८. हमारे सांस्कृतिक प्रतीक	डॉ. श्यामबहादुर वर्मा	२४
०९. संस्था की ओर से...		२९
१०. आर्यजगत् के समाचार		३३

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

द्रविड़ समुदाय में व्याप्त अनार्यत्व एवं हिन्दी-विरोध सम्बन्धी भ्रान्तियाँ और उनका निवारण

भारतीय शिक्षा-पद्धति में सुधार, परिष्कार और समयानुकूल परिवर्तन हेतु नीति-निर्धारण के लिए भारत सरकार ने विगत समय में प्रसिद्ध वैज्ञानिक के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया था। उस समिति ने अपने सुझावों का प्रारूप ३१ मई २०१९ को मानव संसाधन मन्त्रालय को सौंप दिया। समिति ने अपने प्रारूप में '**त्रिभाषा फार्मूला**' को पुन: लागू करने की सिफारिश की थी, जिसके अनुसार प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी **मातृभाषा**, राष्ट्रभाषा **हिन्दी** और अन्तर-राष्ट्रीय भाषा **अंग्रेजी** इन तीन भाषाओं को आरम्भ से ही पढ़ना प्रस्तावित था। यद्यपि यह विचारार्थ केवल प्रारूप था जिस पर सरकार और जनता के विचार लिये जाने थे, किन्तु दक्षिण के, विशेषत: तमिलनाडु के राजनेताओं ने त्वरित प्रभाव से इसका विरोध करना आरम्भ कर दिया। अभी विरोध का दौर शुरुआत में ही था कि वर्तमान भारत सरकार इतनी भयभीत हो गई कि उसके चार-पाँच वरिष्ठ मन्त्री मीडिया के माध्यम से बचाव में आ गये और उन्होंने अप्रत्याशित रूप से यह घोषणा कर दी कि सरकार ने त्रिभाषा फार्मूले अर्थात् हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन के प्रस्ताव को प्रारूप से ही हटा दिया है। शिक्षानीति समिति के एक-दो सदस्यों ने सरकार के इस कदम का भी विरोध किया है कि उनकी सहमति के बिना उनके प्रस्ताव को हटा दिया।

लगभग प्रत्येक शिक्षानीति-निर्धारक समिति ने सम्पूर्ण भारत में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन के लिए बल दिया है। इसकी पृष्ठभूमि में महत्त्वपूर्ण भावना यह रही है कि इससे भारत की एकता, अखण्डता सुदृढ़ होगी और अहिन्दीभाषी लोग मुख्यधारा से जुड़ेंगे जिससे उनके सामाजिक, व्यापारिक, राजनीतिक एवं शासकीय हित पूर्ण होंगे। भारत में ७०-८० प्रतिशत लोग हिन्दी को बोलते-समझते हैं। हिन्दी ही एकमात्र भाषा है जो राष्ट्रभाषा बनने की योग्यता रखती है और राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोये रखने की क्षमता रखती है। इसीलिए भारत के हिन्दीभाषी और गैर-हिन्दीभाषी तटस्थ एवं दूरदर्शी नेताओं, जैसे-चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, महात्मा गाँधी, सरदार पटेल, महर्षि दयानन्द सरस्वती, सुभाषचन्द्र बोस, बाल गंगाधर तिलक, पं. मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय आदि ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में अपना मत दिया है। भारत की स्वतन्त्रता का आन्दोलन हिन्दी के माध्यम से ही लड़ा गया था।

हिन्दी की महत्ता, योग्यता, क्षमता और वैश्विक व्यापकता को अनुभव करके विश्व के १५० से अधिक देशों ने अपने यहाँ हिन्दी के शिक्षण की व्यवस्था की हुई है, किन्तु भारत के दक्षिण प्रान्तों, मुख्यत: तमिलनाडु के कुछ राजनेता लम्बे समय से हिन्दी-विरोध की राजनीति करके जनता को भड़काते रहे हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहे हैं। वस्तुत: वे नेता अपनी जनता के शत्रु हैं और उन्होंने ऐसा करके अपनी जनता का अब तक अहित ही किया है। दक्षिण की जनता को यह गम्भीरता से सोचना चाहिए कि संकीर्ण राजनीति करने वाले नेताओं ने उनको आज तक भारत की मुख्यधारा में भागीदार बनने से वंचित किया है, उनके व्यापारिक, राजनीतिक, नौकरी, पेशा आदि के अवसरों को सीमित किया है। उन्हें सीमित क्षेत्र में बने रहने को विवश किया है। उनके विकास के मार्गों को अवरुद्ध किया है। अपनी राजसत्ता को बनाये रखने के लिए भाषा के नाम पर उनका भावनात्मक दोहन किया है। दक्षिण की जनता जब तक ऐसे संकीर्ण और स्वार्थी नेताओं के बरगलाने से भ्रमित होती रहेगी वह अपनी हानि ही करेगी।

हिन्दी-विरोधी राजनेताओं के तर्क खोखले, निराधार, बेतुके और विदेशी षड्यन्त्र से प्रेरित हैं। उनका कहना है कि हिन्दी विदेशी आर्यों की भाषा है, जो हम पर थोपी जा रही है। इससे हमारी अस्मिता को आघात पहुँचेगा। हम हिन्दी क्षेत्र के गुलाम हो जायेंगे। हम केवल अपनी मातृभाषा और अंग्रेजी ही पढ़ें-पढ़ायेंगे आदि। सच्चाई यह है कि भारत में तमिलनाडु के अतिरिक्त भी अनेक प्रान्त हैं जिनकी अपनी भाषाएँ हैं। हिन्दी ने किसी भी भाषा को, किसी समुदाय की अस्मिता, स्वतन्त्रता को क्षति नहीं पहुँचायी है। हिन्दी राष्ट्र की एक व्यापक समावेशी भाषा है जो सभी विदेशी और प्रान्तीय भाषाओं के आवश्यक शब्दों को अपने में समाविष्ट करके उस भाषा की सहेली बनकर व्यवहृत हो रही है, हानिकारक बनकर नहीं। तमिलनाडु तथा अन्य हिन्दी-विरोधी लोगों की विडम्बनापूर्ण सोच पर महान् आश्चर्य होता है कि वे हजारों वर्षों से उनके साहित्य, संस्कृति, सामाजिक व्यवहार में रची-

बसी संस्कृत-परम्पराजन्य हिन्दी भाषा को विदेशी कहते हैं और केवल १५०-२०० वर्षों से भारत में हजारों किलोमीटर दूर से आई अंग्रेजी भाषा को स्वदेशी मानते हैं। आक्रमणकारी, यातना देने वाले, अत्याचार करके उनकी हत्याएँ करने वाले, उन्हें गुलाम बनाने वाले, उनकी संस्कृति, साहित्य, धर्म को परिवर्तित करके विनष्ट करने वाले, जिनसे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए दक्षिण के लोगों को अनेक बलिदान देने पड़े, उन ब्रिटेनवासी लोगों की अंग्रेजी भाषा उन्हें अपनी लगती है और स्वीकार्य है, जबकि अपने देश और देशवासियों की भाषा से विरोध है!! इस प्रश्न का उत्तर उनको अपने दिल पर हाथ रखकर देना चाहिए कि क्या अंग्रेजी भाषा आपके क्षेत्र में निर्मित हुई थी? आपने अपने देश की भाषाएँ छोड़कर कब-से अंग्रेजी अपनाई और क्यों अपनाई? अंग्रेजी भाषा से आपका क्या और कैसा सम्बन्ध है? यदि सत्ता-स्वार्थ को त्यागकर वहाँ के राजनेता तथा संकीर्ण एवं भावुक सोच को छोड़कर वहाँ के नागरिक इस बिन्दु को दिल पर हाथ रखकर सोचेंगे तो उनकी ही आत्मा उनको बता देगी कि उनके साथ यह सब विदेशी षड्यन्त्र है, कूटनीति है, छलावा है और आप सब उस असत्य से भ्रमित हो गये हैं।

वास्तविकता यह है कि उक्त सब मिथ्या धारणाएँ निर्मित करना, अंग्रेजी शासनकाल में अंग्रेज ईसाइयों का षड्यन्त्र था, फूट डालो की राजनीति थी, ईसाइयत के प्रचार-प्रसार की भूमिका थी, राज्यस्थिरता के लिए भारत के विखण्डन की कूटनीति थी। उससे यहाँ के नागरिक भ्रमित हो गये और वह भ्रम आज भी जारी है। इतिहास हमें बताता है कि इस षड्यन्त्र का आरम्भ ईसाई मिशनरियों द्वारा आविष्कृत भ्रान्तियों से हुआ है। अंग्रेजी शासनकाल में पहले यहाँ के प्रशासकों फ्रांसिस वाइट एलिस, अलेक्जेंडर डी. कैम्पबेल, ब्रायन हाउटन हॉजसन ने तमिल और तेलुगू व्याकरणों का अध्ययन करके इनकी भाषा को 'भारतीय भाषा परिवार' से भिन्न भाषा-परिवार की घोषित किया और फिर इन्हें अनार्यजन बता कर इनके समुदाय को '**तमुलियन**' पृथक् नाम दिया। फिर ईसाई मिशनरी बिशप रॉबर्ट काल्डवेल (१८१४-१८१९) ईसाइयत के प्रचार-प्रसार के लिए दक्षिण में आया। उसने भाषा के आधार पर इनको एक पृथक् नस्ल 'द्रविड़' घोषित करके आर्यों और द्रविड़ों में वैमनस्य का बीज बो दिया। उसने भारतीय परम्परा-विरुद्ध नयी कल्पनाएँ करके इन लोगों को यह कहकर भड़काया कि 'द्रविड़' भारत के मूल निवासी थे। ये मध्य और पश्चिम भाग में रहते थे। आर्यों ने इनका धार्मिक शोषण किया, ठगा, अपनी भाषा को इन पर थोपा। अब तमिल, तेलुगू में से संस्कृत के सब शब्द हटा देने चाहिएँ। आर्यों के विश्वासों से स्वयं को मुक्त कर लेना चाहिए। यूरोपीय जन उनके निकट समुदाय के हैं वे उनको मुक्त करेंगे। ईसाई धर्म-प्रचार द्रविड़ों का उद्धार करेगा' आदि। इस प्रकार 'आर्य' और 'द्रविड़' दो विरोधी समुदाय खड़े करके मिशनरियों ने प्रचार किया। दाक्षिणात्य समाज में अपने पक्षधर प्रतिनिधि स्थापित किये, अपनी कपोलकल्पित धारणाएँ उनके मन में बैठा दीं और उनको भ्रमित करने में सफल हो गये। वे आज भी भ्रमित अवस्था में हैं। हिन्दी-विरोध और आर्य-विरोध इसी सोच के परिणाम हैं। भारत-विरोधी लेखकों ने शिक्षानीति के माध्यम से इसी सोच को निरन्तर हवा देकर प्रज्वलित किया है। सरकारें भी इसी सोच की बनती रहीं।

सर्वप्रथम सन् १९३७ के प्रान्तीय चुनावों में तमिलनाडु में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की सरकार बनी। उन्होंने हिन्दी को पाठ्यक्रम में रखा। ब्राह्मण-परम्परा विरोधी पेरियार और अन्नादुरई ने इसको अपनी राजनीति का हथियार बनाकर दो वर्ष तक विरोधी आन्दोलन जारी रखा। अंग्रेज सरकार ने हिन्दी की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया। १९६३, १९६६, १९६८, १९८६ में हिन्दी के लिए प्रयास होते रहे। दौलत सिंह कोठारी शिक्षा-समिति ने '**त्रिभाषा फार्मूला**' दिया, जो लोकसभा में पास भी हो गया था, किन्तु हिन्दी-विरोध की राजनीति ने हिन्दी-अध्ययन को लागू नहीं होने दिया। वही परिस्थिति अब २०१९ में उपस्थित हो गई और यह सरकार भी पीछे हट गई है। अब तक हिन्दी-विरोध का वातावरण बनाकर राजनेताओं ने सत्ता-सुख पाया है। अब हिन्दी की उपादेयता और रोजगार के अवसर उपस्थित करके ही उस वातावरण को बदला जा सकता है। हिन्दी को रोजगार-परक बनाना होगा।

अंग्रेज ईसाइयों द्वारा प्रचारित इस मिथ्या धारणा को भी शिक्षा द्वारा निर्मूल करना पड़ेगा कि आर्यों ने द्रविड़ों को दक्षिण की ओर खदेड़ा, उनका शोषण किया, और आर्य-द्रविड़ दो विरोधी समुदाय हैं, द्रविड़ अनार्य हैं आदि। इतिहास का सत्य पक्ष यह है कि भारत के किसी साहित्य में और प्राचीन द्रविड़ भाषायी साहित्य में भी कहीं नहीं लिखा कि आर्यों ने द्रविड़ों को खदेड़ कर अपना राज्य स्थापित किया। विजय की गाथा का लिखा जाना स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यदि ऐसा होता तो आर्य-साहित्य में उसका उल्लेख गौरव के साथ मिलता। अतः यह कथन ईसाई मिशनरियों एवं प्रशासकों की मिथ्या कल्पना

है। जो भारत और आर्य-द्रविड़ों में विखण्डन के लिए आविष्कृत की गई है।

दक्षिण के लोग और द्रविड़ आर्य हैं, आर्यवंशीय हैं, आर्य समुदाय में सदा से प्रेम और सम्मान के साथ रहे हैं। भारतीय साहित्य और इतिहास के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रमाण हैं, जो उस समय के हैं जब भारतीय या आर्यों के समाज में आर्य-द्रविड़ भेद की भावना भी नहीं उपजी थी। दक्षिण के सभी समुदायों को प्राचीन भारतीय साहित्य में उपलब्ध कथनों पर गम्भीरता से मनन करना चाहिए और उनको स्वीकार करना चाहिए। कुछ प्रमाण द्रष्टव्य हैं-

१. आर्यों के प्रमुख धर्मशास्त्र 'मनुस्मृति' और 'महाभारत' में लिखा है कि द्रविड़ आदि समुदाय आर्यों के **क्षत्रिय वर्ग** के अन्तर्गत थे। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि द्रविड़ जन मूलतः आर्य क्षत्रिय हैं-

''**इमाः क्षत्रिय जातयः...पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः।**''

(मनु. १०.४३-४४)

अर्थात्-'द्रविड़, पौण्ड्रक, ओड्र आदि समुदाय क्षत्रिय थे। क्षत्रिय होने के कारण ये आर्य थे। कालान्तर में जब इन्होंने क्षत्रिय- कर्म का त्याग कर दिया तो ये क्षत्रिय-वर्ग से बाहर हो गये।' इसी तथ्य की पुष्टि महाभारतकार भी करते हैं-

''**द्राविडाश्च कलिङ्गाश्च...ताः क्षत्रियजातयः।**''

(अनुशासन. ३३.२२)

अर्थात्-'द्रविड़, कलिङ्ग आदि समुदाय मूलतः आर्य क्षत्रिय हैं।' यदि कालान्तर में इन समुदायों ने क्षत्रिय-कर्म का त्याग भी कर दिया था तो उससे इनका आर्य समुदाय और आर्यवंश तो नहीं बदलता, वह तो प्रत्येक स्थिति में रहेगा ही। परिस्थितियाँ कितनी भी बदल गई हों किन्तु द्रविड़ों का मूल वंश तो आर्यवंश ही रहेगा। जातिवादी लोगों ने परवर्ती काल में इनके साथ जो अनार्यत्व आदि का व्यवहार किया वह अवैदिक होने से अमान्य है।

२. कुछ दाक्षिणात्य समुदायों के मूल वंशों का उल्लेख भी संस्कृत के ग्रन्थों में मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि 'आन्ध्र, पुण्ड्र, शबर आदि समुदाय ऋषि विश्वामित्र के वंशज हैं' (''**विश्वामित्रस्यएकशतं पुत्राः आसुः।...ते-एते-अन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः...**'', ७.१८)। पुराणों में लिखा है कि राजा जनापीड़ (अपरनाम आंडीर) के एक पुत्र का नाम 'केरल' था। उसी के नाम पर केरल राज्य स्थापित हुआ (वायु. ९.९.६, ब्रह्माण्ड. ३.७४.६, मत्स्य. ४८.५ आदि)।

३. आर्य समुदाय और संस्कृति-सभ्यता के अन्तर्गत इनके होने का ऐतिहासिक प्रमाण यह है कि आन्ध्र, द्रविड़, केरल, कर्नाटक आदि दक्षिण के राजाओं को आर्यराजा अपने वैदिक अनुष्ठानों में ससम्मान आमन्त्रित किया करते थे। रामायण काल में महाराज दशरथ ने अपने पुत्रेष्टि यज्ञ में इनको आमन्त्रित किया था (बालकाण्ड १३.२८)। महाभारत काल में राजसूय यज्ञ में पाण्डवों ने इनको आमन्त्रित किया था (सभापर्व ३४.११-१२)। यदि ये लोग अनार्य होते तो आर्य-अनुष्ठानों में आमन्त्रित नहीं होते।

४. दक्षिण में संस्कृत-साहित्य और दर्शन की परम्परा समृद्ध रही है। शंकराचार्य, आचार्य सायण, आचार्य माधव जैसे वैदिक विद्वानों ने उसे जीवित रखा है। अत्यन्त प्राचीन काल से दाक्षिणात्यों का आर्य शासन के अन्तर्गत राजा-प्रजा का सद्भावपूर्ण सम्बन्ध रहा है। उस काल में निश्चित रूप से संस्कृत सम्पर्क भाषा रही होगी। दक्षिण की मातृभाषाओं और संस्कृत भाषा में कभी टकराव नहीं हुआ। तमिल कवि श्री तिरुवेल्लुवर आदि ने अपने साहित्य में वैदिक शास्त्रीय परम्परा का अनुसरण किया है। हिन्दी भी संस्कृत परम्परा में प्रादुर्भूत भाषा है, अतः तमिलों द्वारा उसके विरोध का औचित्य नहीं बनता। दाक्षिणात्यों को यह स्मरण रखना चाहिए कि उनके समुदायों और प्रदेशों के मूल नाम संस्कृत के ही हैं। इस परम्परा से उनका चिरकाल से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

आश्चर्य है, द्रविड़जनों ने अपने परम्परागत साहित्य, संस्कृत-साहित्य, इतिहास, मूल समुदाय पर अविश्वास करके विदेशी अंग्रेजों और निहित-उद्देश्य ईसाई मिशनरियों की कपोलकल्पित धारणाओं पर विश्वास किया है!! आप लोग बतायें तो सही कि इन्होंने आपका क्या भला किया है जो उनकी मिथ्या मान्यताएँ और विदेशी भाषा अंग्रेजी आपको अपनी और स्वीकार्य लग रही है? अब समय की माँग है कि सभी दाक्षिणात्यों, विशेषतः तमिलों को अपने साहित्य, परम्परा, इतिहास, पूर्वजों की मान्यताओं का सम्मान करते हुए अपने देश की परम्परा की भाषा हिन्दी का सम्मान करना चाहिए और देश की मुख्यधारा से जुड़कर उसका लाभ प्राप्त करना चाहिए।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

भूल सुधार- जून द्वितीय अंक में यह लिखा गया है कि अब्दुल रशीद को छोड़ दिया गया। वस्तुतः उसे अंग्रेज सरकार ने फाँसी दे दी थी। भूल के लिए खेद है। **(सम्पादक)**

मृत्यु सूक्त-३२

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। सम्पादक

आरोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यतिष्ठ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः।।

इस वेद-ज्ञान की चर्चा के प्रसंग में क्रमशः हमने ऋग्वेद के दशम मंडल के १८ वें सूक्त की चर्चा की है। इससे पहले हमने पाँच मन्त्रों पर विचार किया। आज हम छठे मन्त्र की बात कर रहे हैं। इस मन्त्र का ऋषि यामायनः, देवता त्वष्टा और छन्द त्रिष्टुप है। इसकी शब्दावली बड़ी सरल है। हम मृत्यु को प्राप्त तो होंगे लेकिन वह यथासमय, यथादूरी कैसे हो, इसकी चर्चा मन्त्र में है।

मनुष्य एक प्राणी है, इसकी कई अवस्थायें हैं। गर्भ में रहता है, गर्भ से बाहर आकर बालकपन में रहता है, किशोरावस्था में रहता है, फिर उसके बाद युवावस्था में आता है, प्रौढ़ होता है, वृद्ध होता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। शास्त्र कहता है इनमें कोई भी अवस्था निन्दनीय, अवांछनीय, अनपेक्षित नहीं है, क्योंकि जीवन का जो चक्र है उसका प्रारम्भ होगा तो प्रारम्भ तो सूक्ष्मता से, संक्षेप से होगा। जन्म होगा तो हमारी परिस्थिति अपूर्णता की, असमर्थता की होगी, हमने उसे शैशव अवस्था कहा। थोड़े बड़े होने पर बाल्यावस्था कहा, उससे बड़े होने पर किशोरावस्था कहा, उससे बड़ी अवस्था को हम युवावस्था कहते हैं। उसके आगे जो अवस्था है उसे प्रौढ़ अवस्था कहते हैं फिर वृद्धावस्था कहते हैं, प्रारम्भ से समाप्ति तक ये दशायें हैं। ये दशायें स्वाभाविक हैं।

जब हम कोई यात्रा करते हैं, तो यात्रा के सारे पड़ाव हमारे सामने से निकलते हैं। प्रातःकाल दिन के साथ जागते हैं तो उसमें दोपहर है, अपराह्न है, सायंकाल है, रात्रि है, सभी अवस्थायें सामने से जाती हैं। जैसे काल हमारे सामने से कहीं ऋतुओं के रूप में, कहीं दिनों के रूप में, कहीं किसी दूसरे चक्र के रूप में बीत रहा है, वैसे ही हमारी आयु भी इन सभी अवस्थाओं से होकर गुजरती है। यह नहीं मानना चाहिए कि हम बूढ़े नहीं होंगे या बुढ़ापा नहीं आएगा। बुढ़ापा नहीं आने की दो परिस्थितियाँ हैं कि या तो बूढ़े होने से पहले मर जाओ या जवानी बुढ़ापे में भी बनी रहे। बुढ़ापा हम पर निर्भर करता है, हमारी दिनचर्या पर, हमारे स्वास्थ्य पर, हमारे शरीर की रचना पर, हमारे दैनन्दिन व्यवहार पर। इसके लिए आयुर्वेद में बड़ी सुन्दर पंक्ति है- कहता है,

आयुः कामयमानेन, धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः।

शब्दावली बहुत सुन्दर है। मनुष्य चाहता है कि मेरी आयु लम्बी हो, मेरा स्वास्थ्य उत्तम हो, मैं आरोग्य को प्राप्त करूँ, तभी वह स्वस्थ्य रहकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि कर सकता है। यही जीवन का प्रयोजन है, जीवन का उद्देश्य है, जीवन मिला ही इस काम के लिए है। जीवन में व्यक्ति करता ही यही है। अतः कहा है धर्म, अर्थ आदि जो सुख के साधन हैं उनकी कामना करने वाले व्यक्ति को स्वास्थ्य चाहिए, आयु चाहिए, स्वस्थ आयु चाहिए। वह स्वस्थ आयु कहाँ से मिलेगी? जीवन तो मिल गया जन्म से, लेकिन आयु तो हमारे प्रयत्न पर निर्भर करेगी, तो जो हमारे प्रयत्न पर निर्भर करता है उसके लिए हमें क्या करना चाहिए? तो कहता है **आयुः कामयमानेन**, जो आयु की कामना करता है ऐसे व्यक्ति के द्वारा **धर्मार्थ सुखसाधनम्**- धर्म, अर्थ आदि जो सुख के साधन हैं उनको सिद्ध करने वाली **आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः**

परमादरः आयुर्वेद के उपदेशों में आदर-बुद्धि रखनी चाहिए, परमादर बुद्धि रखनी चाहिए।

परम आदर बुद्धि रखने से क्या होगा? वह उन उपदेशों को अपने जीवन में लाएगा, जिन पर आदर करता है, उनकी मानता है। जिसका आदर करता है, उस पर चलता है। जिस पर विश्वास करता है उसके अनुसार काम करता है। हमारे जो नियम हैं, उन नियमों को हम तब मानेंगे, जब हमारे अन्दर उनके प्रति आदर का भाव होगा।

एक बहुत सुन्दर पंक्ति है-

नित्यं हिताहार-विहार-सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः दयावान् आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।

कहता है कोई व्यक्ति स्वस्थ कैसे रह सकता है? सामान्य रूप से हम समझते हैं कि हम अच्छा खा लेंगे तो हम स्वस्थ हो जायेंगे। हम बहुत व्यायाम कर लेंगे तो स्वस्थ हो जायेंगे। इतना हमारे स्वस्थ होने के लिए पर्याप्त नहीं है। कहा है, **नित्यं हिताहारविहारसेवी** आहार-विहार बिना आपका जीवन नहीं चल सकता। आहार भोजन है और विहार दिनचर्या है।

यहाँ एक शब्द बड़ा रोचक है-हितकर। आयुर्वेद में एक बड़ा रोचक सिद्धान्त है कि हमें सब कुछ करने अधिकार है, लेकिन क्या करने का अधिकार नहीं है? जो हितकर है वह करने का अधिकार है, जो अहितकर है उसको नहीं करना है। इसके लिए एक शब्द काम में लिया है- **योग** अर्थात् किसी वस्तु से हमारा संबन्ध। कहते हैं कि अयोग अच्छी चीज नहीं, मिथ्या योग भी अच्छी चीज नहीं। मिथ्या योग को आप हीन-योग भी कह सकते हैं। अतियोग भी अच्छा नहीं। तो क्या उचित है? सम्यक् योग। अयोग अच्छा नहीं, अतियोग अच्छा नहीं, हीन योग अच्छा नहीं, मिथ्या योग भी अच्छा नहीं अर्थात् किसी भी वस्तु का अति प्रयोग नहीं करना, बिल्कुल भी प्रयोग न करना भी नहीं, गलत प्रयोग भी नहीं करना। तो कैसा करना? **सम्यक् योग**- अर्थात् जो काम जिस समय होना चाहिए, उस समय करना। जो काम जितना होना चाहिए उतना करना, जैसा होना चाहिए वैसा करना, इसको सम्यक् योग कहते हैं और यही सम्यक् योग हमारे जीवन में हितकर होता है।

हमारा जो आहार हो, वह भी सम्यक् होना चाहिए, हमारा जो विहार हो वह भी सम्यक् होना चाहिए। इसलिए कहा है- **नित्यं हिताहारविहारसेवी।** आहार-विहार का महत्त्व बताते हुए गीता के छठे अध्याय में जहाँ योग की चर्चा की है, वहाँ श्रीकृष्ण जी कहते हैं-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।

लोग समझते हैं हम कुछ भी करके योग कर लेंगे। बैठ जायेंगे आसन लगाकर, आँखें बन्द करके तो हमारा योग हो जाएगा। श्रीकृष्ण कहते हैं, ऐसा नहीं हो सकता। उसके लिए तो पूरे जीवन को सुधारना पड़ेगा। चाहे खाना है, पीना है, सोना है, जागना है, इनमें कोई भी चीज ऐसी नहीं है कि वह अनियमित हो, अनुचित हो और योग की सिद्धि हो जाए। कहते हैं कि आप सब काम समय से, उचित रूप से करें।

मनुष्य जो साधना करता है, उपासना करता है, प्रयास करता है, उसके प्रयास कब सफल हो सकते हैं? उसके लिए आयुर्वेद में 'युक्त' शब्द है अर्थात् उचित, सम्यक्। कहते हैं आहार-विहार दोनों मनुष्य करता ही है, हर कोई करता है, लेकिन हरेक को इससे ठीक लाभ नहीं होता, उचित लाभ नहीं होता, क्योंकि करने का प्रकार सबका अलग-अलग है। जिसका ठीक है उसका होगा और जिसका ठीक नहीं है उसका नहीं होगा। आप कुछ भी काम कर लें, कर तो आप लेंगे, लेकिन उसका प्रभाव भी तो आप पर ही होगा। आपने किसी की कोई चीज बिना पूछे उठा ली, आपके मन में आशंका होगी, भय होगा, मन में द्वन्द्व होगा। कहीं आपने किसी को अनुचित कह दिया तो झगड़े का डर होगा। लोग समझते हैं, क्या है, जब नींद आएगी तब सो जायेंगे, रात में भी काम करेंगे, मनोरंजन करेंगे, खेलेंगे, कुछ भी करते रहेंगे। शास्त्र कहता है नहीं, युक्त अर्थात् उचित, सम्यक् ही होना चाहिये। यह भी नहीं हो सकता कि आप देर तक सोते रहें। सूर्योदय से पहले उषाकाल में ही उठना है, तभी आपको लाभ होगा, तभी युक्त होगा, तभी शरीर के लिए उचित होगा।

युक्त स्वप्नः युक्त अवबोधः।

आपका सोना भी ठीक हो और आपका जागना भी

ठीक हो, यह जो दिनचर्या है, यह आपके शरीर और मन दोनों को स्वस्थ रखती है, दोनों को निराशा से, हताशा से, भय से, तनाव से मुक्त रखती है। आपका भोजन भी ऐसा नहीं होना चाहिए, जो आपके अन्दर रक्तचाप को बढ़ाए, वृद्धि करे या गिरा दे।

एक मनुष्य जो दिन भर करता है, यदि उचित नहीं करता है तो जैसे उचित का फल उचित होता है, वैसे अनुचित का फल भी अनुचित होगा। इसलिए जो लोग समझते हैं कि हम केवल ध्यान लगाने को योग कहते हैं, ऐसा नहीं है। शास्त्र में जो यम-नियम आपको दिए हुए हैं उनका उद्देश्य यही है, उसका प्रयोजन यही है कि आप कोई भी काम अनुचित नहीं करेंगे, न शरीर से, न मन से। क्योंकि मन से करेंगे तो शरीर पर प्रभाव पड़ेगा, शरीर से करेंगे तो मन पर प्रभाव पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि मन का शरीर पर प्रभाव नहीं पड़ेगा या शरीर का मन पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। प्रारम्भ कहीं से भी हो सकता है। रोग का प्रारम्भ मन से होकर शरीर पर आ सकता है और शरीर से होकर मन पर जा सकता है। इसलिए हमारी दिनचर्या में दोनों का ही ध्यान रखा गया है। दोनों को ही ठीक रखने का निर्देश दिया गया है। हमारी दिनचर्या को ऐसा बनाया और बताया गया है कि वह बिल्कुल ठीक रहे।

योग केवल बैठने का नाम नहीं है, जप करने का नाम नहीं है, कुछ बोलने का नाम नहीं है, कुछ भला करने वाले का नाम नहीं है। जिसका पूरा दिन और पूरी जीवनचर्या व्यवस्थित है, उचित है, सहज है, सन्तुलित है, ऐसे व्यक्ति के द्वारा जब जो काम किया जाता है वह योग है, तब उसका रास्ता आगे बढ़ता है। किसी यात्रा में आधे-अधूरे साधनों से यात्रा का परिणाम मिल जाए, यात्रा पूरी हो जाए, सफलता तक पहुँच जाए, यह संभव नहीं है। सफलता के लिये यात्रा के साधन पूरे होने चाहिएँ, यात्रा का प्रयोजन हमें पता होना चाहिए। ऐसा करने पर जैसे हम ठीक स्थान पर, ठीक समय पर पहुँच कर अपने प्रयोजन को सिद्ध करते हैं, वैसे ही जीवन के प्रयोजन को भी सिद्ध करने के लिए हमारा जीवन और दिन दोनों ठीक चलने चाहिएँ। आहार और विहार दोनों को उचित और सम्यक् स्वीकार करने से हमारी वृद्धावस्था हमारे लिए दण्ड नहीं होगी, वह हमारे लिए परेशानी नहीं होगी, वह हमारे लिए बड़प्पन होगी, वह वरण करने योग्य होगी, वह सम्मानीय होगी।

तस्य धर्मरतेरासीद् वृद्धत्वं जरसा विना।

कालिदास ने कहा है कि व्यक्ति वृद्ध होता है, लेकिन आवश्यक नहीं कि शरीर से वृद्ध हो। बूढ़ा होता है परिपक्वता से। परिपक्व मन वाला भी बूढ़ा हो सकता है और शरीर में भी परिपक्वता आ जाए, अतः वृद्ध कहाता है। यहाँ कहा गया- **आरोहतायुर्जरसं वृणाना**। वृद्धावस्था हमारे लिये वरण करने योग्य अवस्था होनी चाहिए, दुःखदायक नहीं।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। -**संपादक**

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

योग-विद्या- सरकारी योग और अन्धविश्वास- योग-विद्या का मूल वेद है। निर्विवाद रूप से योग-विद्या वेद की देन है। योग है क्या? योग में सिद्धि की कसौटी क्या है? ऋषि कहते हैं मन का विषय-रहित होना योग है। आँख, कान आदि इन्द्रियों में से प्रत्येक का अपना-अपना विषय है। योग में सिद्धि तभी सम्भव है जब सब विषयों से मन को हटा लिया जावे। योग की इस परिभाषा पर किसी को कोई शङ्का व आपत्ति नहीं है। यहाँ तक कि मुस्लिम विचारक व उपासक भी फ़ारसी भाषा की एक सर्वमान्य सूक्ति भक्ति अथवा ईश्वर-उपासना पर बोलते व लिखते हुये उद्धृत किया करते हैं,

''लब व बन्दो, चश्म बन्द...''

अर्थात् अधरों को बन्द रखो, आँखों को बन्द कर लो...ऐसा करने पर यदि प्रभु दर्शन न हों तो मेरी हँसी उड़ा लेना या मुझे दोष देना। यह दर्शन-शास्त्र[१] में वर्णित सूत्र का फ़ारसी अनुवाद नहीं तो क्या है?

विवेकानन्द केन्द्र, कन्याकुमारी में सागर के बीच में साधना केन्द्र में (गुफ़ा में) केवल ओ३म् शब्द सामने लिखा है। साधक आँख, कान आदि बन्द करके सर्वव्यापक प्रभु का ध्यान करता है। वहाँ भी कोई मूर्ति ध्यान-केन्द्र में नहीं होती। हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि सरकारी-तन्त्र का योग तो इससे सर्वथा उल्टा है। मन्त्री लोग मूर्तियों की पूजा भक्तिभावों में डूबकर करते हैं फिर मूर्ति के सामने आँखें बन्द करके ध्यान में बैठते हैं, तब ध्यान मूर्ति में लगाते हैं। मूर्ति किसी की भी हो इनको इससे कुछ भी लेना-देना नहीं। निर्जीव, जड़-मूर्तियों की पूजा भी हो गई और इनकी योग-विद्या का भी प्रदर्शन हो गया। किसी कवि का कथन है-

'बाग़बाँ भी खुश रहे, राज़ी रहे सय्याद भी'

अर्थात् माली भी प्रसन्न रहे और हिंसक शिकारी की भी सहमति बनी रहे। अन्धविश्वासों को भी खाद-पानी मिलता रहे और योग-विद्या का भी अभिनय करते जाओ। सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् एक ईश्वर से जीवात्मा का साक्षात्कार हो, यह योग है। सरकार को और उसके कर्णधारों को इससे कुछ भी लेना-देना नहीं कि ईश्वर एक है या भगवानों की भी एक अलग ही प्रकार की मण्डी है। आक्रमणकारी मन्दिरों को लूटते रहे। प्रजा का रक्तपात करते रहे। वीर योद्धा उनका सामना करके बलिदान देते रहे, परन्तु ये मूर्तियाँ मच्छर की टाँग तक न तोड़ सकीं। ऋषि दयानन्द जी की यह अन्त: वेदना आर्यों को जड़पूजा, नदी, नालों, पेड़ों की पूजा के अन्धविश्वासों के उन्मूलन के लिये उभारती रहे। हमारी यही कामना है।

डॉ. धर्मवीर वेद-वक्ता पुरस्कार- परोपकारी के पाठकों को यह सूचना देते हुये हमें हर्ष होता है कि रामगढ़ के बन्धुद्वय श्री पीताम्बर जी व श्री कमल जी के परिवार द्वारा दिया जाने वाला **'डॉ. धर्मवीर वेदवक्ता पुरस्कार'** इस वर्ष परोपकारिणी सभा के विद्वान् प्रधान श्रीयुत डॉ. वेदपाल जी को ऋषि मेले के अवसर पर दिया जावेगा। सभा से जुड़े सब सज्जनों तथा समस्त आर्यजगत् को इसके लिये बधाई भेंट करते हुये हमें हर्ष हो रहा है। ऐसे समर्पित विद्वान् का सम्मान गौरव की बात है।

जो रट रखा है वही उगल देते हैं- कुछ महानुभाव पूरा वर्ष आर्यपत्रों में लिखते तो रहते हैं, परन्तु वे लिखते वही बातें हैं जो उन्होंने रट रखी हैं। उनको अपनी नाक से आगे कुछ भी दिखाई नहीं देता। पाठकों पर अपनी धौंस जमाने के लिये विलियम जोन्स, मैक्समूलर आदि कुछ गोरों के नाम उगलकर वीर सावरकर, भगतसिंह आदि के नामों की गर्दान करके ये लोग अपनी रिसर्च का दबदबा बनाये रखते हैं। महाशय राजपाल के बलिदान पर आर्यजाति द्वारा उनको दिये गये सम्मान पर बापू गाँधी द्वारा महाशय राजपाल की निन्दा में लिखे गये दिल दुखाने वाले लेख का वीर सावरकर जी ने ही उत्तर दिया था। इस लेख का किसी पत्र में इन लम्बे-लम्बे लिखने वालों ने कभी उल्लेख किया हो तो कोई हमें भी बताने की कृपा करें। श्री वीर सावरकर ने सर्वाधिक आर्य हुतात्माओं पर पठनीय प्रेरक लेख लिखे। आर्यवीर दल के और युवकों के चरित्र-

निर्माण शिविर लगाने वालों ने कभी उन लेखों का लाभ आर्यजाति को पहुँचाया? हमें तो ऐसा लगता है कि पठन-पाठन, स्वाध्याय से ये लोग दूर-दूर ही रहते हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉक्टर ईश्वरीप्रसाद का काशी-शास्त्रार्थ पर लिखा गया शानदार लेख हमने लेखों व पुस्तकों में उद्धृत किया है। इनको पता ही न लगा कि डॉ. ईश्वरीप्रसाद किस व्यक्तित्व का नाम है? काशी-शास्त्रार्थ उनके अनुसार नवयुग की आहट था।

दुर्गादेवी वोहरा मथुरा शताब्दी में- वीर भगवतीचरण वोहरा, वीराङ्गना दुर्गादेवी दोनों पति-पत्नी भक्तिभाव से आचार्य उदयवीर जी के संग ऋषि की जन्मशताब्दी पर मथुरा गये। उनके आर्यत्व को श्री रमेशजी मल्होत्रा तो कुछ जानते हैं। हमने 'सतत साधना' में चर्चा भी की है। जिन लोगों ने भगतसिंह, बिस्मिल के नाम ही रट रखे हैं वे लेखक तो यह भी नहीं जानते कि नेशनल कॉलेज के ग्रुप फोटो में वीर भगतसिंह अपने गुरु आचार्य उदयवीर के पीछे खड़े हैं। 'इतिहास बोल पड़ा' अपने विषय की बेजोड़ पुस्तक हमने डॉ. धर्मवीर जी के कारण परोपकारिणी सभा को प्रकाशनार्थ दी। केवल डॉ. वेदपाल जी ने उसका महत्त्व जाना। हम भी अपनी भूल पर पछता ही रहे हैं कि पुस्तक का अवमूल्यन कर दिया। ऋषि-जीवन की महिमा पर इस सर्वथा विलुप्त सामग्री को संसार के सामने लाने का अपने जीते जी शीघ्र कुछ उपाय करेंगे। आधुनिक युग में पश्चिम में भारत के जिस महापुरुष पर पहला लेख सचित्र छपा वे महर्षि दयानन्द जी महाराज थे। आर्यसमाजियों की कभी यह विशेषता थी कि यह स्वाध्याय व खोज की प्रवृत्ति वाले लोगों का संगठन रहा। आज आर्यसमाज अपनी यह विलक्षणता खो चुका है। जिनको दर्द है वे करवट लें। कुछ तो करें।

एक किसान की याद आ गई- आज आर्यसमाज के लोगों की इस मन:स्थिति को देखकर हमें हरियाणा के एक किसान की याद आ गई। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज गाड़ी में यात्रा कर रहे थे। डिब्बे में भीड़ थी। एक किसान के पास पोटली में उसका भोजन था। उसके भोजन को एक सहयात्री मुसलमान ने हाथ लगा दिया। वह युग ही ऐसा था। तब विधर्मी का छुआ भोजन हिन्दू खाते ही नहीं थे। इसी बात पर जाट ने झगड़ा कर दिया कि मेरे भोजन को छुआ ही क्यों?

बात को सुलझाने के लिये कई सहयात्रियों ने उस मुसलमान को कहा, ''तुम चौधरी को आठ आने जुर्माना दे दो।'' उसने ऐसा करना मान लिया। उस जाट को आठ आने (आधा रुपया) तत्काल दे दिया। चौधरी आठ आने लेकर शान्त हो गया और झट से भोजन करने लग गया। मुसलमान ने कहा, अब ये रोटियाँ तू क्यों खा रहा है। ये मुझे दे। आठ आने फिर किसलिये लिये हैं? चौधरी ने कहा, ''वह तो हाथ लगाने का-छूने का जुर्माना था। भोजन मेरा ही है। मैं ही खाऊँगा।''

जाट के कथन का कोई प्रतिवाद न कर सका। डिब्बे के सहयात्री उस जाट की सूझ व साहस पर दंग रह गये। बहुत से हँसने लगे। उसी डिब्बे में आर्य-जाति के गौरव महाराज स्वतन्त्रानन्द यात्रा कर रहे थे। स्वामी जी ने उस देवता से पूछ लिया, ''तुम ने यह नीति-रीति किससे सीखी?''

स्वामी जी तो उसे नहीं जानते थे, परन्तु वह उन्हें पहचान रहा था। तपाक से, बड़ी शान से वह बोला, ''आपसे ही यह सब कुछ सीखा है।'' आर्यो! अपने साहित्य से, इतिहास से और पूर्वजों से कुछ तो सीखो और अतीत को वर्तमान कर दो। तुम्हारे प्रमाद के कारण अन्धविश्वास राष्ट्रीयता का रूप धार कर फिर से सिर उठाने लगे हैं।

मनुष्यों के गढ़े भगवान् न बचा सके- संसार के अधिकांश लोग सृष्टि के रचयिता की सत्ता को स्वीकार करते हैं। ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने वाले सब जन यह मानते हैं कि संसार को और संसार में हमारे शरीरों को भी ईश्वर ही बनाता है। हम ईश्वर को न बनाते हैं और न बना सकते हैं, परन्तु ईश्वर को मानने वालों में पौराणिक हिन्दू ही ऐसे हैं जो ईश्वर को बनाते रहते हैं, विसर्जित करते व डुबोते हैं। ईश्वर कर्म भोग की व्यवस्था करता है, परन्तु ऐसा मानते हुये भी गली-गली में, नगरों व ग्रामों में अपने भगवानों को हिन्दू नित्य भोग लगाता, सुलाता व स्नान भी करवाता है। उड़ीसा में जगन्नाथपुरी का भगवान् तो रुग्ण भी होता है। तब उसे सरकारी अस्पताल में औषधि उपचार के लिये ये भक्त लेकर नहीं जाते।

कर्मफल के सिद्धान्त को अटल मानने वाले पौराणिक हिन्दू पाप-कर्मों का क्षमा होना भी मानते हैं। दर्शन की अति गूढ़ बातें बताने वाले नये-नये भगवान् गढ़ते व बनाते रहते हैं। प्राय: पत्थर से मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। तांबे, पीतल, लोहे व सोने-चाँदी से भी भगवान् गढ़-गढ़ कर बनाये जाते हैं। पत्थर, लोहा, ताँबा, चाँदी जिनसे भगवान् की मूर्तियाँ बनाकर पूजी जातीं हैं उन पत्थरों को, लोहे को मनुष्य नहीं बना सकता। स्वामी सत्यप्रकाश कहा करते थे कि मनुष्य का हाथ लगते ही इन धातुओं से भगवान् निकल जाता है। गार्डर टाटा का, लोहा भगवान् का, भव्य भवन को, छत को, फर्श को बनाने वाला कारीगर, मकान का स्वामी तो सेठ, परन्तु वे वन-पर्वत जिनकी सामग्री प्रयोग में लाई गई वे भगवान् के, परन्तु सरिया, सीमेन्ट, ईंटें आदि बिरला, टाटा के कहलाते हैं।

मन्नत माँगने गये तीर्थयात्री मर गये- तीर्थयात्राओं पर भगवानों के दर्शन करने आते-जाते अनेक जन इन दिनों दुर्घटनाग्रस्त होकर मर गये। ये समाचार पढ़-सुनकर अनायास मुख से निकला, अपने ही बनाये गये भगवानों ने अपने भक्तों की रक्षा न की। जो वैष्णो देवी व अन्य देवी-देवता भक्तों की कामनायें पूरी करते हैं, वे कश्मीर में रक्तपात, अशान्ति और आतंकवाद को सत्तर वर्षों में भी समाप्त न कर सके। भक्तों की आँखें फिर भी नहीं खुलतीं।

मुद्रण-दोष कैसे दूर हों?- श्री ओम् मुनि जी ने कुल्लियात के दूसरे भाग में दो मुद्रण दोष (Proof mistakes) बताये हैं। उनका धन्यवाद। इतने बड़े ग्रन्थ में हमने दिन-रात एक करके अनुवाद की तथा मूल उर्दू ग्रन्थ के प्रमाणों तक की सैंकड़ों अशुद्धियाँ दूर कर दीं। फ़ारसी के बोझिल शब्द भी दूर करके भाषा के शब्द दे दिये। छोटे टाइप के प्रूफ़ पढ़ना इस आयु में एक जटिल समस्या थी। दो क्या यदि कोई बीस-पचास और दोष निकाल दे तो भी कोई आश्‍चर्य की बात नहीं होगी। आर्यसमाज में न तो अनुभवी प्रूफ़रीडर मिलते हैं और न सिद्धान्तों के जानकार। आर्य कम्प्यूटरकार दस-पाँच हैं।

डॉ. धर्मवीर जी सभा की पुस्तकों के छपने तक कई-कई बार दिल्ली जाते थे, ऐसा धुन का धनी पैदा करो। जो मुद्रण-दोष बताये गये हैं वे मूल ग्रन्थ में ही थे । हमारी पकड़ में नहीं आये। दो पंक्तियाँ ठीक-ठीक हों तो पूरा पैरा ठीक ही होगा, यह सोचकर प्रूफ़ पढ़ने वाला आगे चल पड़ता है। नये-नये लेखक और अगली पीढ़ी के कार्यकर्त्ता मुनि जी जैसे पुराने अनुभवी पुरुषों की सीख से लाभ लें। हमसे जो बन पाया कर दिया। यह सम्पादकीय में ही लिख दिया था कि गुणी विद्वान् कई न्यूनतायें पायेंगे। यह जटिल कार्य है। खेल नहीं।

शास्त्रार्थ-साहित्य और शास्त्रार्थ-महारथी- लिखने का या लेखक बनने का चाव तो एक अच्छी बात है, परन्तु इसके लिये जिस लगन, धुन व श्रम की आवश्यकता है, वह बाजार से कोई क्रय नहीं कर सकता है। इसके बिना इस कार्य को जो कोई हाथ में लेगा वह समाज का हित नहीं, बहुत अहित करेगा। श्री राजवीर जी आर्य ने संस्कृत में अपनी योग्यता बढ़ाने में अच्छी सफलता प्राप्त कर ली है। इस्लामी साहित्य के दुर्लभ व पठनीय ग्रन्थों के संग्रह में अब अगली पीढ़ी में हमारे समाज के पास केवल एक ही अधिकारी विद्वान् हैं और वह हैं श्री राजवीर आर्य। यह जानकर सबको हर्ष होगा, परन्तु अकेले राजवीर जी से काम नहीं बनेगा। ऐसे बीस रत्न चाहिये। राजवीर जी भी कहते रहते हैं और मैं भी श्री अमरनाथ जी आर्य को इस दिशा में सर्वसामर्थ्य से लगने की प्रेरणा देता ही रहता हूँ। वह लगे रहते हैं। कुछ समय उन्हें और चाहिये, फिर वह पूर्णकालिक हो जावेंगे।

इतिहास-विषय में रुचि दिखाने वाले तो अनेक हैं, परन्तु इस क्षेत्र में दो ही व्यक्ति अधिकारपूर्वक कुछ करके दिखा सकते हैं। प्रिय धर्मेन्द्र जी 'जिज्ञासु' को पाकर आर्यसमाज सिर ऊँचा कर सकता है। श्री राजेश आर्य आटा अपने स्वास्थ्य का सुधार कर लेंगे तभी समाज की सेवा करके यश पा सकेंगे। वह चरित्रवान्, निष्ठावान् और समर्पित ऋषि भक्त हैं। मेरी चाहना है कि मेरे जीवनकाल में ही वह रोगमुक्त होकर सक्रिय हो जावें। एक आर्य देवी की इस क्षेत्र में साधना व गति पर आर्यसमाज अभिमान कर सकता है व करेगा। वह देवी हैं कर्नाटक के ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध हमारे सवा सौ वर्षीय गुरु भाई श्रद्धेय पं. सुधाकर जी चतुर्वेदी की सुपौत्री डॉ. सुमित्रा जी आर्या। वह इस समय ६३ वर्ष की हैं। दिन-रात समाज सेवा की धुन में

मस्त हैं।

स्वामी सत्यप्रकाश जी का एक संस्मरण- यह सन् १९८३ की घटना है स्वामी सत्यप्रकाश जी ने दयानन्द मठ दीनानगर में अत्यन्त स्नेह से गम्भीर मुद्रा में इस विनीत से कहा कि बलिदान शताब्दी स्मारिका के लिये जिस भी विषय पर चाहें आप लेख दे सकते हैं, परन्तु आपके लिये मैंने एक विषय सोच रखा है। आप यदि उस पर लिखेंगे तो मुझे अच्छा लगेगा। मेरी दृष्टि में उसके लिये आप ही उपयुक्त हैं। पूछा, ''महाराज! किस विषय पर आप लिखवाना चाहते हैं?'' कहा, ''आर्यसमाज का उत्तर-प्रत्युत्तर में लिखा गया साहित्य।''

''पूछा, इतने व्यापक विषय पर कितने पृष्ठ मुझे देंगे?''

आपने कहा, ''जितने चाहें ले लें। पचास पृष्ठ भी इस विषय के लिये आप ले सकते हैं।''

इस विषय पर उस स्मारिका में लिखा गया यह लेख सबसे लम्बा है और मेरे उस लेख को गुणी जनों ने सर्वोत्तम माना था। आर्यसमाज का भाग्योदय होगा। हमारी यही कामना है।

-अबोहर, पंजाब

टिप्पणी: १. द्रष्टव्य सांख्य दर्शन का सूत्र ६-२५ ध्यानंनिर्विषय मनः।

संन्यास ग्रहण की आवश्यकता

जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है, वैसे ही आश्रमों में संन्यासाश्रम की आवश्यकता है क्योंकि इसके बिना विद्या, धर्म कभी नहीं बढ़ सकता और दूसरे आश्रमों को विद्या ग्रहण, गृहकृत्य और तपश्चर्यादि का सम्बन्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है। पक्षपात छोड़कर वर्त्तना दूसरे आश्रमों को दुष्कर है। जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत् का उपकार करता है वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता क्योंकि संन्यासी को सत्य विद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का जितना अवकाश मिलता है उतना अन्या आश्रमी को नहीं मिल सकता।

(स. प्र. स. ५)

मिलावट

डॉ. रामवीर

दूध मलाई मावा रबड़ी
खाया करते थे बचपन में ,
आज दूध पीने से डरते
पता नहीं क्या मिला हो इसमें।

अडल्टरेशन अथवा मिलावट
भी आई आधुनिक युग में ,
मैं इन का समकक्ष शब्द भी
नहीं खोज पाया संस्कृत में ।

बेईमानी सदा रही है
आज भी है और पहले भी थी,
किन्तु आज इसकी जो अति है
वैसी पहले कभी नहीं थी ।

दूध है बच्चों का आहार
दूध पे उनका दारमदार ,
उस में अभक्ष्य पदार्थ मिलाना
बच्चों की हत्या का प्रकार ।

यूरिया और डिटर्जेंटों से
जो करते हैं दूध तैय्यार ,
उनको दण्ड नहीं जो देती
वह बस नाम की ही सरकार ।

शासन यदि हो गया निकम्मा
तो जनता ही करे विचार ,
दुष्ट मिलावट करने वालों
का हो सामाजिक बहिष्कार ।

अब भी समय है जागो लोगो
बैठो नहीं होकर लाचार ,
बीमारी बढ़ती जाएगी
यदि न किया समुचित उपचार ।

86, सैक्टर 46 , फरीदाबाद, (हरियाणा)

गायत्री

स्वामी समर्पणानन्द

कर्मयोगी कहते हैं कि कर्म करो। भगवान् है या नहीं इस झगड़े में क्या मिलेगा?

भक्तियोगी कहते हैं कि नाम भजते रहो। यही सबसे बड़ा कर्म है।

परन्तु निरा नाम-भजन तो आलस्य और अकर्मण्यता का ही प्रच्छन्न और इसीलिये अति भयंकर रूप है।

दूसरी ओर भक्तिहीन कर्म चाबीहीन घड़ी के समान है, एक बार घड़ी खड़ी हो गई तो दुबारा कौन चलाए। भक्तिहीन कर्मयोग भारी मूर्खता है। शक्ति का भण्डार तो है पर हम उससे लाभ नहीं उठाते।

भगवान् भक्तों की बुद्धि को प्रेरणा देता है, परन्तु भक्त नाम आलसी और अकर्मण्य का तो नहीं।

''**धियो यो नः प्रचोदयात्**''। हम उसका ध्यान करें जो हमारी बुद्धियों और कर्मों को प्रेरणा दे। यह भक्तियोग है।

परन्तु यह प्रेरणा किसको मिलती है, क्या कर्महीन आलसियों को? कदापि नहीं। प्रेरणा उन्हें मिलती है जो निरन्तर उसे अपने अन्दर धारण करते हैं। यह कर्मयोग है। यह कर्मयोग कैसे है-

प्रभु को अपने अन्दर धारण करना सर्वश्रेष्ठ कर्म है।

प्रश्न उठता है कि प्रभु क्या कोई कुर्त्ता, धोती, पगड़ी एवं अंगरखा है जो धारण किया जाता है। इसका उत्तर वेद इन शब्दों में देता है।

''**स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।**'' ऋ. ५.५१.१५

हम सूर्य और चन्द्र के समान स्वस्ति मार्ग पर चलें।

इस भाव को ऋ. १०.२.३ मन्त्र में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है।

'**आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम्।**'

हम, जिस सुन्दर शासन-व्यवस्था में सूर्य चन्द्रादि देव, उस प्रभु की आज्ञानुसार चलते हैं उसी के अनुसार अपने जीवन-रथ को वहन करने में समर्थ हुए हैं। उतने अंश तक ही हमने देव-मार्ग का अनुसरण किया है।

बस यह अनुसरण-कर्म ही मनुष्य को प्रभु से प्रेरणा लेने का अधिकारी बनाता है।

इस प्रकार '**धीमहि**' में कर्मयोग और '**धियो यो नः प्रचोदयात्**' में समर्पणात्मक भक्ति-योग का अद्भुत समन्वय है।

यह देवों का अनुसरण ज्ञान, प्रयत्न और सुख अथवा सच्चिदानन्द इन तीन अङ्गों में बँटा हुआ है। प्रभु के जितने गुण वेद में वर्णित हैं, वे ज्ञान, प्रयत्न और सुख इन तीनों भागों में हैं। हमें सुखस्वरूप बनना है। इसलिये आवश्यक है कि हम समयग्ज्ञान प्राप्त करें और तदनुकूल प्रयत्न अथवा आचरण करें।

हमने ठीक ज्ञान और ठीक प्रयत्न किया है या नहीं, इसका प्रमाण है कि हमने पूर्णसुख प्राप्त किया है या नहीं? बस यह ज्ञान '**भूः**' है, प्रयत्न '**भुवः**' है और सुख '**स्वः**' है।

यन्नदुःखेन साभिन्नम् न च ग्रस्तमनन्तरम्।
अभिलाषोपनीतम् च तत् सुखं स्वः पदास्पदम्।।

बस इस **भूः**, **भुवः**, **स्वः**, का ही संक्षिप्त रूप '**ओ३म्**' है। ध्वनि-मात्र का आदि मूल '**अ**' और स्थान कण्ठ है।

मध्य '**उ**' और स्थान मुख का मध्य है। **म्** सब संगीतमय ध्वनियों का अन्त है और सच पूछिये तो ध्वनि मात्र का अन्त है, क्योंकि यही एक अक्षर है जो मुख बन्द करने पर भी बोला जा सकता है। इसका स्थान ओष्ठ है।

मकार ही एक ऐसा अक्षर है जो मुख बन्द करने पर भी बोला जा सकता है, इसीलिये यह समाप्ति का सूचक है और मधुर होने के कारण संगीतमयता का सूचक है। इसीलिये यह '**स्वः**' का अर्थात् परम सुख का प्रतीक है।

यदि इनमें से एक-एक अंग का ही अभ्यास करें तो मनुष्य का पूर्णपरिपाक न होगा। पूर्णपरिपाक करने वाला तो '**भूर्भुवः स्वः**' का समन्वय है। इसलिये उस समन्वय को '**भर्गः**' ठीक परिपाक करने वाला कहा गया है।

परन्तु यह रूप पूर्णरूप से धारण किया गया तब समझना चाहिये '**जब**' वह स्वादुतम अन्न के समान आग्रहपूर्वक वरण करके खाया जाय। जो अन्न खिन्न मन से जैसे-तैसे गले के नीचे उतार लिया जाता है वह '**धकेलेन्यम्**' भले ही हो, **वरेण्यम्** नहीं कहला सकता।

वह स्वाद भी साधारण नहीं अलौकिक हो, जिसे तत् कहकर अनिर्वचनीयता का रूप दे दिया जाय।

अब इस मन्त्र में परमात्मा को सविता के नाम से कहा गया है, इसीलिये इस गायत्री को (गेय गीत को) सावित्री कहा गया है।

सविता का अर्थ है शासन का स्रोत, **सू** का अर्थ है शासन करना। सविता का अर्थ हुआ शासन करने वाला। राष्ट्र में जब राजा राज्य के नियमों का निर्माण करता है तब **सविता**, जब दण्ड देता है तब **यम**, जब अधिकारों का निर्णय करता है तो **'अर्यमा'**, जब शक्ति दिखाता है तो **इन्द्र** कहलाता है, परन्तु इन्द्र को भी शासन-सत्ता सविता से प्राप्त होती है। ऋग्वेद में स्पष्ट शब्दों में कहा है-

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णात् -ऋ. १०.१४९.१

सविता ने राज्य को नियन्त्रित करने वाले नियमों से धरती को रमणीय बना दिया। बस यह नियम बनाने वाला (विधान निर्मात्री सभा का रूप) रूप ही सविता रूप है।

हम **'भूभुर्वः स्वः'** स्वरूप ओ३म् के उस परिपाक प्रगल्भ सविता रूप को जो अति वरेण्य है, सदा धारण करें, जिससे समर्पण की भावना पूरी हो और वह हमारी बुद्धियों को युक्ति-मार्ग पर चलावे। इस प्रकार-

१. ओ३म्-सच्चिदानन्द का विकसित रूप।

२. भूः-ज्ञान।

३. भुवः-कर्म।

४. स्वः- सुख है।

५. तत्-उस अनिर्वचनीय।

६. देवस्य-दिव्य-शक्ति-सम्पन्न।

७. सवितुः-नियम-निर्माण के अधिष्ठाता के।

८. भर्गः-परिपाक प्रगल्भ

९. वरेण्यम्-वरणीयतम रूप को।

१०. धीमहि-हम (केवल अकेला मैं नहीं सब) सब धारण करें। अनुसरण द्वारा आत्मसात् करें।

११. यः-जो।

१२. नः- हमारी (बहुवचन सर्वभूत हित का सूचक)।

१३. धियः-कर्म और प्रज्ञा को।

१४. प्रयोदयात्- सन्मार्ग पर चलावे।

इस प्रकार इन १४ अंगों से युक्त गायत्री को श्वास-प्रश्वास के संगीत में मिलाकर मनुष्य अपने जीवन में उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ हमारे जीवन का नेता यह गायत्री मन्त्र हमें पहुँचाना चाहता है, सो इसके पीछे-पीछे (अनु) चलते-चलते वहीं हम स्थित हो जावें जहाँ इसका ठहरने का स्थान है तो हम कह सकेंगे कि हमने गायत्री का अनु-स्थान=अनुष्ठान कर लिया। यह है गायत्री का अनुष्ठान।

यहाँ इस लघु लेख की समाप्ति से पूर्व एक बात की ओर विशेष ध्यान दिलाना आवश्यक है इसलिये उसको विशेष रूप से पृथक् करके वर्णन करते हैं। यह है सविता देवता का स्वरूप, परन्तु इसका निरूपण करने से पूर्व हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यह शब्द किस धातु से बना है। यह शब्द **'सू प्रेरणे'** इस तुदादिगण की धातु से बना है। इसके लिये दो ही प्रमाण पर्याप्त हैं।

पहिला तो **'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव'** यह प्रसिद्ध मन्त्र है इसमें, **परासुव** और **आसुव** पद स्पष्ट रूप से तुदादिगण की सूचना दे रहे हैं।

ऋग्वेद में ४, ५३, ३ मन्त्र में **सविता** के साथ पड़ा हुआ **प्रसुवन्** शब्द स्पष्टतया तुदादिगण की **'सू प्रेरणे'** इस धातु की ओर निर्देश कर रहा है।

इसी प्रकार ऋग्वेद ३,३३,६ में कवियों की वाग्धारा कहती है-**'तस्य वयम् प्रसवे यामउर्वीः'** उस इन्द्र के शासन में हम दूर तक चल रहे हैं, यहाँ **प्रसव** शब्द का अर्थ बच्चा जनना नहीं, किन्तु शासन है। इसी प्रकार वेद में **'सवितुः प्रसवेऽश्विनोबाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्'** यह तीनों एक साथ आते हैं जिसका अर्थ है कि यह कर्म्म सविता के शासन में अश्वियों के साधन से पूषा के हाथों से हो रहा है, सो सविता देवता वही है, जब किसी राष्ट्र के प्रताप का उदय होता है। उससे पूर्व राष्ट्र के उत्साहमय अभ्युत्थान की उषा आती है, फिर राज्य का नियम निर्माण होता है, फिर शासन। यही बात ऋग्वेद ५.८२.२ इस मन्त्र के **'अनुप्रयाणमुषसो विराजति'**, इन शब्दों में कही है। सवितादेव उषा के प्रयाण के पीछे विराजमान होता है।

यही बात सायणाचार्य ने ऋग्वेद १०.१३९.१ मन्त्र की व्याख्या में इन शब्दों में स्पष्ट कही है। **उषसः प्रादुर्भावानन्तरं सूर्यस्योदयात् पूर्वम् यः कालस्याभिमानी देवः सवितोच्यते।** अर्थात् उषा के प्रादुर्भाव के पश्चात् सूर्योदय से जो काल है, उस समय का सूर्य सविता कहलाता है। बस, स्पष्ट है कि व्यक्ति के जीवन से लेकर मानव, राष्ट्र के जीवन तक कर्मयोग के उत्साह के जन्म के पश्चात् कर्म में लगने से पूर्व भावी कार्यक्रम के सम्पूर्ण नियम बना लेने चाहिए। कर्मयोग में हाथ-पैर चलेंगे किन्तु उससे पूर्व हमारी बुद्धियों को नियम बनाने के निमित्त ठीक प्रेरणा मिलनी चाहिए, यही सविता देवता का काल है, सो इसी समय **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** यह प्रार्थना कितनी ठीक बैठती है। यह सहृदयों के रसास्वादन का विषय है, वाग्विलास का नहीं, बस इसको जानकर सावित्री का मर्म समझ में आता है। प्रभु की कृपा हो कि हम इसे समझकर गायत्री का ठीक अनुष्ठान करने में समर्थ हों।

वैदिककालीन शिक्षा की वर्तमान में प्रासंगकिता

डॉ. जगदेव विद्यालङ्कार

'विद् ज्ञाने' धातु से वेद शब्द बनता है जिसका अर्थ ज्ञान है। जहाँ ज्ञान होता है वहाँ सुख होता है और जहाँ अज्ञान होता है वहाँ दु:ख होता है। वैदिककाल में मनुष्य अज्ञान से कम ग्रस्त थे अत: तब सुख-शान्ति अधिक थी। वर्तमान में वेद-ज्ञान का प्रचार कम होने के कारण मनुष्य अज्ञान से अधिक ग्रस्त है अत: दु:ख भी अधिक है। मैक्समूलर, मैक्डोनल्ड, जैकोबी आदि पाश्चात्य विद्वान् वेदों का काल ३५०० से लेकर ६००० तक प्राचीन मानते हैं। पाश्चात्यों से प्रभावित भारतीय विद्वान् तिलक आदि भी वेद के काल को दस हजार वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं मानते। पावगी महोदय भूगर्भशास्त्र के आधार पर लगभग २४००० वर्ष प्राचीन और पं. दीनानाथ शास्त्री चुलैट ज्योतिष के आधार पर ३००००० वर्ष प्राचीन वेद का काल स्वीकार करते हैं। प्राचीन ऋषि-मुनि और वर्तमान में महर्षि दयानन्द सरस्वती वेदों को ईश्वर की वाणी मानते हैं और उतना ही प्राचीन मानते हैं जितनी पुरानी सृष्टि है। अब १९६०८५३१२०वाँ सृष्टि संवत् चल रहा है। इनकी मान्यता के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में परमपिता परमेश्वर ने मानवमात्र के कल्याण के लिए अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा इन चार ऋषियों के पावन हृदयों में क्रमश: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान प्रकट किया, उसके बाद श्रुति परम्परा से चलता रहा और कालान्तर में पुस्तकाकार में आ गया।

महर्षि दयानन्द की मान्यता है कि आर्यावर्त के तिब्बत प्रदेश में सृष्टि की उत्पत्ति हुई थी। तब से लेकर महाभारतकाल तक आर्यों का एकछत्र निष्कंटक राज्य रहा। महाभारत काल से लगभग एक हजार वर्ष पहले आर्यावर्त में वेदानुकूल आचरण घटने लगा और यहाँ की उज्ज्वल सभ्यता और संस्कृति का पतन प्रारम्भ हुआ।

वेदों में मानव जीवन की सर्वांगीण उन्नति की शिक्षा विद्यमान है। वहाँ भौतिकता और आध्यात्मिकता का सुन्दर समन्वय है। वेद कहता है कि है '**मनुर्भव**' अर्थात् हे मनुष्य! तू मनुष्य बन। अभिप्राय यह है कि हे मानव! तू संकीर्णता, स्वार्थपरता, निर्दयता, क्रूरता, पशुता, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा, लोभ-लालच, काम-क्रोध, मद-मोह आदि अमानवीय भावों को छोड़कर स्नेह, सौहार्द, सौजन्य, सद्भाव, सौमनस्य, सद्बुद्धि, सहयोग, सहनशीलता आदि मानवोचित गुणों को धारण कर। दुनिया में जितने भी मत, पंथ और सम्प्रदाय चल रहे हैं वे सब किसी व्यक्ति के द्वारा चलाए हुए हैं जबकि वेद ईश्वरीय वाणी है, अत: वह सत्य और पवित्र है। अन्य मतावलम्बी अपने-अपने धर्मग्रन्थ को ईश्वर का इलहाम कहते हैं जबकि उन सबका आविर्भाव काल छह हजार वर्ष से पुराना नहीं है। ईश्वर न्यायकारी है वह अपने ज्ञान का इलहाम सृष्टि के मध्य में नहीं करता अपितु सृष्टि के आरम्भ में ही करता है जैसे कि वेद का किया। अत: वेद की शिक्षा मानव-कल्याण की शिक्षा है।

महर्षि दयानन्द ने आधुनिक संसार के लोगों का आह्वान करते हुए कहा-वेदों की ओर लौटो, क्योंकि वेदों का मार्ग ही सत्य का मार्ग है। वेदों के पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने को ही वे आर्यों का परम धर्म मानते हैं। आर्यसमाज के उद्देश्य के बारे में वे स्पष्ट करते हुए कहते हैं-संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। वेदों में शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति पर स्थान-स्थान पर बल दिया गया है। वेद में लिखा है-"**अश्मा भवतु ते तनू:**।" तेरा तन पत्थर के समान होवे। व्यायाम आदि के द्वारा हमें अपने शरीर को पत्थर के समान दृढ़ बना लेना चाहिए ताकि शत्रु का प्रहार करने का साहस ही न हो। ऋग्वेद में कहा है-"**बलं धेहि तनूषु न:**" हे प्रभो! हमारे तनों में बल धारण कर। अथर्ववेद में इस शरीररूपी लोक को इन्द्रियों द्वारा अपराजित रहने की प्रार्थना की है-"**अयं लोक: प्रियतमो देवानामपराजिता:।**" अर्थात् यह शरीर रूपी लोक इन्द्रियों से कभी न हारे। यजुर्वेद में कहा है-स्वस्थ और दृढ़ शरीर ही उपासना का साधन हो सकता है-"**स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायु:।**"

स्वावलम्बन मनुष्य का बहुत बड़ा गुण है। कर्म करने

वाला व्यक्ति ही स्वावलम्बी हो सकता है। कर्म न करने वाले को वेद ने डाकू कहा है–''**अकर्मा दस्यु:**'' सौ वर्ष तक जी परन्तु कर्म करते हुए जी–''**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा:।**'' वेद कहता है–''**स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व**'' स्वयं कर्म कर और स्वयं फल खा। अर्थात् फल खाने की इच्छा है तो दूसरे के मुँह की ओर मत देख अपितु स्वयं को योग्य बना। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं। पराधीन को तो स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता अत: वेद में स्वावलम्बी, स्वतन्त्र और स्वाभिमानी जीवन जीने का संदेश है।

भय भी दु:ख का कारण है अत: वेदों में अनेक स्थानों पर निर्भयता का उपदेश किया है। मनुष्य का जीवन ऐसा हो जिसे कहीं भी और कभी भी तथा किसी से भी भय न हो। भक्त ईश्वर से प्रार्थना करता है–''**यतो यत: समीहसे ततो नो अभयं कुरु।**'' हे प्रभु जहाँ–जहाँ तेरी चेष्टा चल रही है वहाँ–वहाँ से हमारे लिए निर्भयता उत्पन्न कर।

अथर्ववेद कहता है ''**यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि**'' अर्थात् हे परमात्मन्! जहाँ–जहाँ से डरते हैं वहाँ–वहाँ से हमारे लिए अभय उत्पन्न कर। अथर्ववेद में ही अन्यत्र लिखा है–

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा न: सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।

१९।१५।६

अर्थात् मित्र से अभय, शत्रु से अभय, ज्ञात पदार्थ से अभय और अज्ञात से अभय हो। हमारे लिए रात्रि में निर्भयता, दिन में निर्भयता हो, सब दिशाएँ मेरी मित्र होवें।

आत्मिक उन्नति के लिए वेदों में सत्य के पालन का निर्देश दिया है–

''**इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि**'' (यजु. १–५)

मैं झूठ को छोड़कर सत्य को प्राप्त होऊँ। ''**ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृत:**'' (ऋग्वेद ९.७३.६) बुरे कर्म करने वाले मनुष्य सत्य के मार्ग को पार नहीं कर सकते। ''**ऋतस्य नाभिरमृतं विजायते**'' (ऋ. ९.७४.४) सत्य का केन्द्र अमृत हो जाता है, अर्थात् सत्य के आधार पर कभी नाश नहीं हो सकता। ''**सत्येनोन्तभिता भूमि: सत्येनोन्तभिता द्यौ:**'' यह भूलोक और द्युलोक सत्य के सहारे थमा है अर्थात् यह समस्त संसार सत्य के बिना न स्थिर रह सकता है और न ही उन्नति कर सकता है।

निराशा और अवसाद प्राप्त व्यक्ति को प्रोत्साहित करने के लिए वेद में कहा है–''**उद्यानं ते पुरुष नावयानम्।**'' हे पुरुष! तेरा कर्त्तव्य ऊपर जाना है, न कि नीचे गिरना। ''**अदीना: स्याम शरद: शतम्**'' हे प्रभो! मैं सौ वर्ष की पूर्ण आयु भर अदीन होकर रहूँ।

वेदों में ब्रह्मचर्य अर्थात् संयम पर भी विशेष बल दिया है। ब्रह्मचर्य के बल से समाज के हर वर्ग का व्यक्ति लाभ प्राप्त कर सकता है। ''**आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते**'' आचार्य भी ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्मचारी को चाहता है। जो आचार्य अपने शिष्यों को ब्रह्मचारी बनाना चाहता है वह स्वयं भी उसके नियमों का पालन करता है।''**ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति**'' राजा भी ब्रह्मचर्य के तप से युक्त ही राष्ट्र की रक्षा कर सकता है अर्थात् विलासी राजा कभी आदर्श राजा सिद्ध नहीं हो सकता। ''**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत**'' ब्रह्मचर्यरूपी तप के द्वारा विद्वान् ज्ञानी पुरुष मृत्यु को भी दूर भगा देते हैं।

वैदिक कालीन परिवार आदर्श एवं सुखी परिवार होते थे, उनका जीवन मर्यादित एवं अनुशासित होता था। अथर्ववेद में लिखा–

''**अनुव्रत: पितु: पुत्रो मात्रा भवतु संमना:।**
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवान्।।''

अथर्व ३.३०.२

पुत्र पिता के व्रत धर्माचरणादि के अनुकूल व्रत वाला हो, सन्तान का मन माता के मन के साथ मिला हो, पत्नी पति से शान्तिदायक मीठी वाणी बोले।

समाज का पारस्परिक व्यवहार उत्कृष्ट रहे, इसके लिए वेद कहता है–''**मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे**'' हम सबको मित्र की दृष्टि से देखें। ''**पुमान् पुमानसं परिपातु विश्वत:**'' सब ओर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की रक्षा करे। हम सभी मनुष्य परस्पर एक–दूसरे के साथ सहानुभूति एवं शुचितापूर्ण व्यवहार बनाये रखें, अत: वेद कहता है–''**देहि मे ददामि ते**'' अर्थात् तू मुझे दे एवं मैं तुझे देता हूँ।

देने की भावना से ही मनुष्य देवत्व की कोटि में आता है।

इस प्रकार से शारीरिक बल, स्वावलम्बन, निर्भयता, सत्याचरण, उत्साह, ब्रह्मचर्य, परिवार एवं समाज आदि विभिन्न क्षेत्रों एवं विषयों से सम्बन्धित वेदों के उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि वैदिककालीन शिक्षा मानव-कल्याण की शिक्षा थी जिसके कारण लाखों व करोड़ों वर्षों तक मनुष्य का जीवन सुखी, सन्तुष्ट, समृद्ध, सम्पन्न व प्रसन्न बना रहा। इसके विपरीत वर्तमान में विज्ञान की अत्यधिक उन्नति होने पर भी तथा पर्याप्त भौतिक उन्नति होने पर भी मनुष्य के जीवन में सुख-शान्ति एवं सन्तोष नहीं है। आज का मनुष्य हाय धन! हाय धन! की रट लगा कर रात दिन येन-केन-प्रकारेण उसी को बटोरने में लगा हुआ है। माता-पिता अपनी सन्तान को बड़े से बड़ा पद और बड़ी से बड़ी नौकरी दिलाने के लिए महंगे से महंगे स्कूलों में पढ़ाते हैं और तरह-तरह के हथकण्डे अपनाते हैं। गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ एवं लम्बी-लम्बी ए.सी. गाड़ियाँ प्राप्त करके भी हमारी इच्छाएँ पूर्ण नहीं हो रही हैं। साक्षरता की दर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होकर भी नैतिकता का पतन होता जा रहा है।

बड़ी-बड़ी उपाधि प्राप्त करने वाले डॉक्टर गुर्दे की चोरी करते हैं, आई.आई.टी. संस्थानों से डिग्री लेने वाले उच्च कोटि के इंजीनियर सड़क और पुल बनाने में सीमेंट की चोरी करते हैं, ऊँचा वेतन लेने वाले अध्यापक और प्राध्यापक नियमित कक्षा न लेकर कामचोरी करते हैं, मोटी फीस लेने वाले वकील अपने क्लाइण्ट को गुमराह करते हैं। अर्जुन की मछली की आँख की भाँति केवल वोट पर नजर रखने वाले राजनेता बड़े-बड़े घोटाले करते हैं। आये दिन चोरी, डकैती, रिश्वतखोरी, दुराचार, दुष्कर्म एवं हत्या और आत्महत्या के समाचारों से समाचार-पत्र पटे रहते हैं तो यह मानना पड़ेगा कि हमारी शिक्षा और संस्कार ही दोषपूर्ण हैं।

यदि हमें अपने जीवन को सुखी और आनन्दित करना है तो शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन करना होगा। नैतिकता, मानवता, आत्मकल्याण, परोपकार, समाजसेवा, राष्ट्रप्रेम, भगवत्प्रेम आदि गुणों को बढ़ाना है तो वैदिककालीन शिक्षा की वर्तमान में अत्यधिक प्रासंगकिता है।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की नि:शुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ९८७९५८७७५६

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

१. १३ से २० अक्टूबर, २०१९- **योग-साधना शिविर**

२. ०१, ०२, ०३ नवम्बर २०१९- **ऋषि मेला**

ऋषि उद्यान में होने वाले कार्यक्रमों के लिए

सम्पर्क सूत्र- ०९४६०४२११८३, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

शङ्का समाधान - ५१

डॉ. वेदपाल

शङ्का- ओ३म् आक्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु।
सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः।।
अथर्व २.३६.६

मन्त्र पर भाष्यकार की टिप्पणी है-'विवाह संस्कार में वर का आसन वधू के दाहिने हाथ को किया जाता है।' अतः विवाह संस्कार में वर-वधू के आसन की स्थिति क्या होनी चाहिए?

नरदेव शास्त्री, हॉलैण्ड।

समाधान- आपकी शङ्का का आधार 'प्रदक्षिणम्' पद है। इसके अनेक अर्थ हैं- १. दाईं ओर को घूमना २. दक्षिण दिशा में ३. दक्षिण दिशा की ओर ४. सकल ५. सम्पूर्ण ६. अनुकूल आदि।

प्रकृत मन्त्र की व्याख्या में आचार्य सायण ने 'प्रदक्षिणम्' पद का अर्थ- ''प्रदक्षिणम् प्रदक्षिणाचारं विवाहानुकूलव्यापारं कुरु'' किया है। पण्डित विश्वनाथ वेदालङ्कार ने- ''प्रदक्षिणम्=प्रवृद्धिकारक, सर्वम्=सब धन को, कृणु=तू प्रदान कर'' किया है। पण्डित जयदेव विद्यालङ्कार ने- ''हे वर! तू, सर्वं=सबको, प्रदक्षिणं कृणु=अपने दायें, अनुकूल रख अथवा सर्वं प्रदक्षिणं कृणु=हे वर! तू सर्वं=अग्नि की प्रदक्षिणा कर। सर्व=शर्व, अग्नि के आठ नामों में से एक नाम है।''

इस प्रकार उपर्युद्धृत तीनों भाष्यकार आप द्वारा उद्धृत टिप्पणी के समर्थक नहीं हैं, अपितु जयदेव जी का अर्थ तो आपके प्रतिकूल ही है। आपने भाष्यकार का समग्र मन्त्र का अर्थ भी उद्धृत नहीं किया है साथ ही नामोल्लेख भी नहीं किया है। अस्तु

विवाह संस्कार में वर-वधू के आसन-स्थान के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं शास्त्रीय पक्ष संक्षेप में प्रस्तुत है-

महर्षि दयानन्द का अभिमत- (१) विवाह संस्कार के समय स्वागत (साधु भवान् आस्ताम्-विष्टर-पाद्य-अर्घ-मधुपर्क) के अनन्तर गोदान, कन्यादान के पश्चात् वर-वधू दोनों मण्डप स्थान में कुण्ड के समीप आकर-ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुः आदि मन्त्र पाठ करते हुए-'' ...दोनों वर-वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके **कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किए हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठ के...**'' संस्कारविधि पृ. १२९

(२) पाणिग्रहण तदनु ओ३म् आरोहेममश्मानमश्मेव... मन्त्रपूर्वक शिलारोहण के पश्चात्...'' ...यहाँ वधू-वर कुण्ड के समीप आके पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहें और **यहाँ वधू दक्षिण ओर रह के** (यहाँ यह स्मरणीय है कि शिलारोहण के समय वर वधू के दक्षिण ओर जाकर उत्तराभिमुख खड़ा होकर लाजा होम सम्पन्न करते हैं। अतः महर्षि ने स्पष्टीकरणार्थ यह स्पष्ट निर्देश किया है कि यहाँ वधू दक्षिण की ओर रहती है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि दोनों पूर्वाभिमुख हो लाजा की आहुति देते हैं, जबकि शिलारोहण में वधू पूर्वाभिमुखी तथा वर उत्तराभिमुख होता है।) अपनी हस्ताञ्जलि को वर की हस्ताञ्जलि पर रखे...।'' सं. वि. पृ. १३८-१३९

(३) लाजाहोमपूर्वक प्रदक्षिणा करके- ''पश्चात्- 'ओ३म् भगाय स्वाहा। इदं भगाय इदन्न मम' इस मन्त्र को बोल के प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उस धाणी की एक आहुति देवे। पश्चात् **वर, वधू को दक्षिण भाग में रख के** कुण्ड के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठ के...''

सं. वि. पृ. १४०

(४) विवाह के पश्चात् वर के गृह को जाते समय... ''इस मन्त्र को वर बोले और रथ में बैठते समय **वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बैठावे**, उस समय वर...''

सं. वि. पृ. १५०

(५) वर-वधू जब वर के घर आ पहुँचे तब वर- ''वधू को सभा मण्डप में ले जावे। तत्पश्चात् वधू वर पूर्व स्थापित यज्ञ कुण्ड के समीप जावें, उस समय वर-ओ३म् इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः। इहो सहस्रदक्षिणोपि पूषा निषीदतु- अथर्व. २०.१२७.१२

इस मन्त्र को बोल के **यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में**

पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठावे।'' सं. वि. पृ. १५१-१५२

विवाह संस्कार के सन्दर्भ में महर्षि ने तीन बार विवाह विधि तथा संस्कार के पश्चात् वर के गृह को जाते समय रथ अथवा किसी अन्य वाहन पर बैठते समय एवं वर के गृह पहुँचकर यज्ञ सम्पादनार्थ यज्ञकुण्ड के समीप बैठते समय इन पाँचों स्थलों पर वर का स्थान वधू के वाम भाग/उत्तर में बैठने का विधान किया है। इस प्रकार वधू वर के दक्षिण भाग/दाहिनी ओर बैठती है।

वर वधू के स्थान के विषय में गृह्यसूत्रकारों का मत भी द्रष्टव्य है-

क- गोभिल गृह्यसूत्र में वधू का स्थान **वर के दक्षिण की ओर** कहा गया है। तद्यथा-

पूर्वे कटान्ते दक्षिणतः पाणिग्राहस्योपविशति

- गोभिल गृ. २.१.२२

ख- खादिर गृह्यसूत्र में भी वधू का स्थान **वर के दक्षिण** में ही वर्णित है-

पाणिग्राहस्य दक्षिणतः उपवेशयेत्

-खादिर गृ. १.३.७

ग- आपस्तम्बगृह्यसूत्रकार ने वर का स्थान वधू के उत्तर (अर्थात् **वधू का स्थान वर के दक्षिण ही होगा**) की ओर प्रतिपादित है-

अथैनामुत्तरया दक्षिणे हस्ते गृहीत्वाऽग्निमभ्यानीय अपरेणाग्निमुदगग्रं कटमास्तीर्य तस्मिन्नुपविशत उत्तरो वरः

-आप. गृ. २.४.९

घ- बौधायन ने भी वर का स्थान उत्तर तथा **वधू का दक्षिण में ही माना है-**

अपरेणाग्निमुदीचीन प्रतिषेवणामेरकां साधिवासाम् आस्तीर्य तस्यां प्राञ्चावुपविशत उत्तरतः पतिर्दक्षिणा पत्नी

- बौ. गृ. १.३.२०

च- हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र भी **वधू का स्थान वर के दक्षिण में ही मानता है-**

दक्षिणतः पतिं भार्योपविशति- हि. गृ. १.३.२

छ- जैमिनि गृह्यसूत्र में भी **वधू का स्थान वर के दक्षिण में ही स्वीकार किया गया है-**

दक्षिणत एरकायां भार्यामुपवेश्योत्तरतः पतिः

-जै. गृ. १.२०

गृह्यसूत्रकारों के सदृश ही स्मृतिकार भी वधू का स्थान प्रतिपादन करते हैं। तद्यथा-

अ- वशिष्ठ स्मृति में नवोढा के गृहप्रवेश के पश्चात् क्रियमाण **यज्ञ में वधू का स्थान दक्षिण में** (यह महर्षि के अभिमत (५) के सदृश है।) कहा गया है। द्रष्टव्य- वशिष्ठ स्मृति १६.४ तथा ४.४६

आ- लघ्वाश्वलायन स्मृति में विवाह होम में वधू का स्थान वर के दक्षिण में है-

दम्पती तु व्रजेयातां होमार्थं चैव वेदिकाम्।
वरस्य दक्षिणे भागे तां वधूमुपवेशयेत्।।

ल. आ. स्मृ. १५.३६

उपलब्ध गृह्यसूत्रकारों में **केवल काठक गृह्यसूत्र ही वर का स्थान दक्षिण में मानता है।** तद्यथा-

दक्षिणतः पुमान् भवति- काठक गृ.

वामभाग में-

पत्नी का स्थान वाम भाग में किन परिस्थितियों में रहेगा? इस विषय में महर्षि दयानन्द का अभिमत संस्कार विधि में द्रष्टव्य है। ये स्थल हैं- १. गर्भाधान से पूर्व क्रियमाण यज्ञ- द्र. पृ. ३१

२. नामकरण संस्कार- द्र. पृ. ५५-५६

३. निष्क्रमण में यद्यपि यज्ञ नहीं होता, किन्तु निष्क्रमण के समय पत्नी पति के वामभाग में रहती है।

द्र. पृ. ५९, ६१

संस्कारविधि की पृष्ठ संख्या 'जन ज्ञान प्रकाशन, दिल्ली' से प्रकाशित संस्करण संवत् २०३२ के अनुसार है।

सार रूप में कहा जा सकता है कि संस्कार विधि, गृह्यसूत्र तथा स्मृतियों के अनुसार विवाह में वधू का स्थान दक्षिण तथा वर का स्थान वधू से उत्तर अर्थात् वधू के वामभाग में है।

पारस्कर गृह्यसूत्र १.५.२ में 'उपविशति' क्रिया का प्रयोग है, किन्तु स्थान का शब्दोपात्त वर्णन नहीं है। भाष्यकार हरिहर, गदाधर और विश्वनाथ ने वर के दाहिनी ओर वधू के बैठने का निर्देश किया है। मात्र काठक गृह्यसूत्र एकमात्र अपवाद है।

हे प्रभु! परम ऐश्वर्य दो

प्रकाश चौधरी

हम सब अपने जीवन की सफलता के लिए तथा हर प्रकार की शान्ति तथा सुख-सुविधा के लिए उस प्रभु से प्रार्थना करते रहते हैं। अपनी हर कामना एवं इच्छा पूर्ति के लिए अपने-अपने ढंग से उस प्रभु के सामने निवेदन करते हैं और जानते हैं कि वह देने में समर्थ है। वह असीम है। उसके देने का सामर्थ्य असीम है। वास्तव में माँगा भी उसी से जाता है-जो दे सकता है। जिसके पास देने का सामर्थ्य हो। प्रभु तो ऐश्वर्यशाली है। हर प्रकार के ऐश्वर्य का भण्डार है वह। वेदों में कितने ही मन्त्र मिलते हैं जिसमें व्यक्ति अपने लिए ऐश्वर्य पाने की प्रार्थनाएँ करता है। कहीं

''स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम् (कहकर) **आयु:, प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्''**

- तथा कहीं

''ओम् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्...'' कहता है।

गुरुमन्त्र में 'बुद्धि' के लिए प्रार्थना की गयी है। ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना में धन-ऐश्वर्य की माँग की गई है। सन्ध्या के आरम्भ में ही शक्ति की (वाक् वाक्...यशोबलम्) तथा यश के लिए प्रार्थना है। अर्थात् व्यक्ति अपने लिए ऐश्वर्य माँगता है और उसके लिए पुरुषार्थ भी करता है। हमारी वैदिक संस्कृति का सिद्धान्त है ''कर्म सिद्धान्त'' जो तू चाहता है-उसके लिए पुरुषार्थ कर। तभी वह प्रभु जो न्यायकारी है-अवश्य ही तुम्हारी प्रार्थना को सुनेगा और कामना पूर्ण करेगा। कुल मिलाकर यदि देखें तो प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए ज्ञान, शक्ति, स्वास्थ्य तथा धन वा ऐश्वर्य माँगता है ताकि वह आनन्दपूर्ण जीवन बिता सके।

ऋग्वेद में एक बहुत ही सुन्दर मन्त्र है जो प्राय: हम उच्चारते हैं-

ओ३म् इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाच: सुदिनत्वमह्नाम्।।

इस मन्त्र में भी ऐश्वर्यों की ही प्रार्थना की गयी है। ज्ञान, बल, स्वास्थ्य, धन, वाणी आदि सब माँगा गया है, परन्तु इन सबसे पूर्व 'श्रेष्ठ' (उत्तम, परम) शब्द जोड़ दिया गया है।

''इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि...सुदिनत्वमह्नाम्''।

यहाँ केवल ऐश्वर्य नहीं, विशेष ऐश्वर्य की प्रार्थना की गयी है। कुछ ऐसी विशेषताएँ जो ऐश्वर्य को परम कोटि का बना सकें। ''ज्ञान ऐश्वर्य है'', परन्तु ज्ञान वही परम है जो व्यक्ति को दु:खों से छुड़ा सके, अविद्या मिटा सके। केवल शाब्दिक ज्ञान दु:खों से छुड़ाने की बजाय अधिक दु:खों में धकेल सकता है।

समाज में मूर्ख, ज्ञानी तथा परम ज्ञानी मिलते हैं। मूर्ख व्यक्ति की अपनी विशेषताएँ हैं। खाना, सोना, आलस्य, प्रमाद, निश्चिंत रहना आदि आठ विशेषताएँ कही गयी हैं। कुछ पढ़े-लिखे भी मूर्ख कहे गए हैं। एक बिना पढ़ा-लिखा व्यक्ति जितनी निश्चिन्तता से सो सकता है उतना पढ़ा-लिखा व्यक्ति नहीं सो सकता। ज्ञानी व्यक्ति भी जिसके पास केवल शब्द या व्याकरण ज्ञान है वह भी केवल उस ज्ञान का बोझा उठाये हुए दु:ख ही भोगता रहता है। शास्त्रकार विद्या की परिभाषा करते हुए कहते हैं-

''सा विद्या या विमुक्तये''

वास्तव में विद्या एवं ज्ञान वह है जो दु:ख से छुड़ा दे, हमारी त्रुटियाँ बताकर उन्हें छोड़ने का मार्ग दे, प्रेरणा दे।

''विद्या ददाति विनयम्''।

विद्या विनय देती है। विनम्र बनाती है। नहीं तो व्यक्ति विद्या पाकर अहंकार में ही डूबा रहता है।

पण्डितराज जगन्नाथ संस्कृत के महान् पण्डित व कवि थे, परन्तु घमण्ड इतना हुआ कि उनकी रचनाओं में ही छलकने लगा। वह संस्कृत की अपनी रचना 'भामिनी विलास' में लिखते हैं, जिसके हिन्दी अनुवाद के अनुसार-महान् पुरुष सुने जाते हैं पर हमने तो आज तक देखा नहीं। विदुषी महिलाएँ प्रतिस्पर्धा के योग्य ही नहीं होतीं। वे तो दया की पात्र हैं। साधारण विद्वान् तो जैसे-तैसे अपना गुजर ही करते हैं। मेरी कोटि का कोई दूसरा विद्वान् नहीं है,

जिससे शास्त्र-चर्चा करके अपनी योग्यता का प्रदर्शन कर सकूँ। इसी प्रकार एक और कवि भवभूति जी ने भी लिखा ''इस समय मेरे समान कोई नहीं तो क्या हुआ? काल का प्रवाह असीम है। यह धरती विशाल है-कभी तो कोई न कोई उत्पन्न हो ही जायेगा।'' यहाँ तक कि भर्तृहरि जैसा प्रकाण्ड व्याकरणवेत्ता जिनका शब्दकोष पर असाधारण अधिकार था वह भी इस दोष से बच नहीं सके। वह लिखते हैं कि ''महान् व्याकरणवेत्ता पतंजलि मुझे बिना देखे इस संसार से चला गया तो वह अकृतार्थ ही रह गया। मुझे देख लेता तो अपनी वास्तविकता को समझ लेता।'' कितना घमण्ड था उन्हें? परन्तु जब संसार की ठोकरें खाकर विद्या का प्रकाश हुआ तो उनका जीवन ही बदल गया। भर्तृहरि ने अपने नीतिशतक में लिखा है कि ''जब मैं थोड़ा जानता था तो यौवन के मस्त हाथी के समान विद्या के घमण्ड में चूर था। अपने आपको सर्वज्ञ समझता था। जब उच्चकोटि के विद्वानों का संग हुआ तो लगा कि मैं तो मूर्ख हूँ, मुझे तो कुछ भी नहीं आता। मेरे अभिमान का ज्वर उतर गया और मैं शान्त हो गया हूँ।'' इस प्रकार कितने उदाहरण हैं-जो प्रकाण्ड पण्डित हो ज्ञान पाकर भी परम ज्ञान के अधिकारी नहीं बन पाए। इसीलिए कहा कि ज्ञान वही है जो सांसारिक क्लेशों से मुक्त करा सके। वही ज्ञान परम ऐश्वर्य है। बल एवं शक्ति भी वही परम है जो अन्याय के विरुद्ध हो। शोषितों के लिए, उनके कष्टों को दूर करने के लिए हो। धनरूपी ऐश्वर्य भी वही होगा जो अभावग्रस्तों की सहायता कर सके। इसलिए कहा कि हे इन्द्र! हे परम ऐश्वर्यों के भण्डार! आप हमें ऐसा धन दीजिये जो पवित्र हो, श्रेष्ठ हो और जिसे पुरुषार्थ एवं धर्म से कमाया गया हो। ''**श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि**।'' अनुचित मार्ग से अर्जित किया धन कष्ट देने वाला होता है। उसकी आयु (वेदों के अनुसार) अधिक से अधिक दस वर्ष हो सकती है। उसके उपरान्त वो विनाशकारी हो जाता है।

पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में अपार धन को देख लोभी दुर्योधन पाण्डवों को अपने षड्यन्त्र में फँसाकर जुए के माध्यम से सारी सम्पत्ति हड़प लेता है। बाद में वही धन ऐश्वर्य उसके विनाश का कारण बनता है। इसीलिए श्रेष्ठ धन की प्रार्थना की गयी-जो सरल और पवित्र मार्ग से अर्जित किया गया हो।

मन्त्र में कहा गया कि हे इन्द्र! धन के साथ-मुझे दक्षता दो-बल दो। बिना दक्षता के, बिना कौशल के मैं उसका उचित उपयोग नहीं कर पाऊँगा, न ही उस धन की रक्षा कर पाऊँगा। न केवल दक्षता बल्कि मन्त्र में कहा '**सुभगत्वम्**' यह धन मेरे सौभाग्य का कारण बने। मैं धन का उपयोग ऐसे करूँ-जिससे मुझे यश मिले। मन्त्र में आगे कहा ''**रयीणाम् पोषम्**।'' मेरे आय के साधन पुष्ट हों, स्थायी हों। क्षीण होने का भय न हो। फिर कहा ''**तनूनाम् अरिष्टिम्**'' मुझे उत्तम स्वास्थ्य दो। मैं रोगमुक्त रहूँ ताकि जीवन में आनन्द पा सकूँ। रोगी शरीर केवल बोझ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

अमेरिका के प्रसिद्ध धनाढ्य हेनरी फोर्ड जो फोर्ड कार कंपनी के मालिक थे। उनके पास अथाह धन था किन्तु शरीर ऐसा कि वह एक पाव दूध भी पचा नहीं सकते थे। रोगी शरीर के सामने कितना ही धन हो, सुख-सुविधा हो यदि वह उसका उपयोग नहीं कर सकता तो फिर धन किस काम का? रोगी व्यक्ति का बल, यश सब समाप्त होने लगता है। व्यक्ति शरीर के साथ मानसिक तौर पर रोगी होने लगता है। समाज में यश भी कमजोर पड़ जाता है। बलहीन व्यक्ति को तो सभी दबाने का प्रयास करते हैं। समाज में इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। जलती हुई अग्नि को बढ़ाने के लिए वायु उसका मित्र बनकर उसे और बढ़ाता है, परन्तु वही वायु एक दीये को बुझा देती है। इसीलिए मन्त्र में निरोग शरीर के लिए प्रार्थना की गयी है। अन्यथा धन, बल, नैपुण्य, सौभाग्य आदि सब व्यर्थ हो जाएंगे।

एक और ऐश्वर्य की प्रार्थना की गई है जो उपरोक्त ऐश्वर्यों में सबसे महत्त्वपूर्ण है। अगर यह परम ऐश्वर्य मिल जाये तो जीवन धन्य हो जाये। मधुर वाणी की प्रार्थना ''**स्वाद्मानं वाचः**'' मधुर वाणी एक ऐसा प्रबल एवं उत्तम गुण है जिससे व्यक्ति शत्रु को भी अपना बना लेता है। वाणी का प्रभाव सफलता और असफलता का आधार है। मृदु एवं कोमल वाणी से कठिन से कठिन कार्य बन जाता है और कठोर वाणी बनते हुए कार्य को भी बिगाड़ सकती है। व्यक्ति के सारे ऐश्वर्य-धन, बल, ज्ञान, दक्षता, स्वास्थ्य

सब व्यर्थ हो जाते हैं यदि मधुर वाणी का सद्‌गुण न हो। कठोर वाणी अग्नि तुल्य है जो सब कुछ जला कर राख कर देती है।

महाभारत युद्ध होने के अनेकों कारणों में से एक कारण पाण्डवों के द्वारा कठोर वाणी का प्रयोग था। यद्यपि दुर्योधन स्वाभाविक रूप से महत्त्वाकांक्षी और पाण्डवों के प्रति ईर्ष्यालु था, परन्तु कृष्ण, पाण्डवों तथा द्रौपदी के व्यंग्यात्मक वाणी तथा उपहास ने अग्नि में घी डालने का कार्य किया। धृतराष्ट्र दुर्योधन को समझाते हैं कि तेरे लिए भी पाण्डवों के सभागार जैसा सभागार बनाया जा सकता है। तुम क्यों दुःखी होते हो। दुर्योधन अपनी व्यथा प्रकट करते हुए कहता है कि पाण्डवों के सभा भवन में मय नामक शिल्पी ने ऐसा फर्श बनाया है जिसमें बिन्दुसर के रत्न तथा स्फटिक मणि लगाई है, जो मुझे कमलों से सजी, पानी से बहती हुई बावड़ी प्रतीत हुई, जो वास्तव में फर्श था। मैंने अपने वस्त्रों को ऊँचा कर उसे पार करना चाहा तो भीम ने हँसते हुए मेरा उपहास किया। उसका वह अभिमान से भरा उपहास मुझे जला रहा है। इतना ही नहीं, इसी प्रकार की बनी एक और बावड़ी मुझे प्रतीत हुई-लेकिन वह वास्तव में पानी से ही भरी थी-जिसे मैंने फर्श समझा और मैं उसमें गिर पड़ा। इस पर कृष्ण, अर्जुन यहाँ तक कि द्रौपदी तथा दूसरी स्त्रियों ने ठहाका लगाया, मन में गहन वेदना हुई। इसी प्रकार द्वारों से भी मुझे धोखा हुआ। भीम ने मुझे धृतराष्ट्र-पुत्र पुकारते हुए कहा-द्वार इधर है उधर नहीं। वास्तव में यह पाण्डवों का अनुचित व्यवहार था, कठोर वाणी ही थी जो युद्ध का कारण बनी।

इस मन्त्र में 'मधुर वाणी' की याचना की गयी है। जो दूसरे को व्यथित न करे। सामने वाले को अपना बनाये तथा यश एवं कीर्ति का कारण बने। महाभारत में ही उत्तम एवं विनम्र वाणी का उदाहरण मिलता है। युद्ध आरम्भ होने वाला है-शत्रु सेनाएँ आमने-सामने हैं युधिष्ठिर-अपने तात एवं गुरुओं के सम्मुख जाकर विनय भाव से चरण छूकर उनसे युद्ध करने की अनुमति माँगते हैं। शास्त्र में कोई भी कार्य एवं युद्ध करने के लिए आरम्भ में बड़ों की अनुमति माँगने का विधान है। उनकी विनम्रता, उनकी मधुर वाणी से तथा व्यवहार से प्रभावित होकर भीष्म पितामह न केवल अनुमति प्रदान करते हैं बल्कि विजयश्री का आशीर्वाद देते हैं। यही प्रभाव द्रोणाचार्य, कृप आदि गुरुओं पर भी होता है और विजयी होने का आशीर्वाद प्राप्त होता है। यह होता है उत्तम वाणी का लाभ। युधिष्ठिर तो कौरव सेना से भी मधुर वाणी से उनका आह्वान् करते हैं जिसका परिणाम होता है कि दुर्योधन का अपना सहोदर भाई युयुत्सु उनका साथ देने के लिए पाण्डवों की ओर से अपने भाई के विरुद्ध अन्तिम समय तक लड़ता है। न्यायपूर्ण, अनुशासित एवं मधुरवाणी का ही यह प्रभाव था।

अन्त में इस मन्त्र में कहा ''**सुदिनत्वमह्नाम्**।'' प्रभु से प्रार्थना है कि हे प्रभु! मेरा प्रत्येक दिन मंगलमय हो। आनन्दमय हो। उल्लास से भरा हो। मुझे प्रत्येक ऐश्वर्य दो लेकिन परम ऐश्वर्य दो। उत्तम ऐश्वर्य, श्रेष्ठ ऐश्वर्य दो ताकि मैं जब तक जीऊँ आनन्द से रहूँ और अपने जीवन को सफल बनाते हुए आपका प्रेम पा सकूँ। आनन्द पा सकूँ।

करनाल, हरियाणा।

कल्पित संन्यासी

जब एषणा ही नहीं छूटी तो संन्यास क्योंकर हो सकता है? पक्षपात रहित सत्योपदेश से जगत् का कल्याण करने में अहर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियों का मुख्य काम है। अब अपने अधिकार कर्मों को नहीं करते पुनः संन्यासादि नाम धरना व्यर्थ है। नहीं तो, जैसे गृहस्थ व्यवहार और स्वार्थ में परिश्रम करते हैं, उनसे अधिक परिश्रम परोपकार करने में संन्यासी भी तत्पर रहे, तभी सब आश्रम उन्नति पर रहें। जब लों वर्तमान और भविष्यत् में संन्यासी उन्नतिशील नहीं होते, तब लों आर्य्यावर्त और अन्य देशस्थ मनुष्यां की वृद्धि नहीं होती।

(स. प्र. स. ११)

हमारे सांस्कृतिक प्रतीक

डॉ. श्यामबहादुर वर्मा

यह अनिवार्य नहीं कि सम्पादक इस लेख के सभी विचारों से सहमत हो ही, परन्तु लेख के महत्त्व को देखते हुए इसे परोपकारी द्वारा पाठकों तक पहुँचाया जा रहा है। इसमें से पाठक स्वविवेक द्वारा सार को ग्रहण कर लेंगे। इसी आशा से....। - सम्पादक

प्रतीकों की अपनी भाषा होती है। वे बोलते हैं, यदि हम सुन सकते हों। वे हमें नए अर्थ दिखाते हैं, यदि हम देख सकते हों। वे परम्परा को निर्जीव से सजीव और जड़ से चेतन कर देते हैं, यदि हम उन्हें समझ सकें। प्रतीक हर संस्कृति के महान् तत्त्वज्ञान के वाहक सरस माध्यम होते हैं। भारतवर्ष और उसके धर्म, संस्कृति, कला, साहित्य इत्यादि का ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए तो यहाँ के सांस्कृतिक प्रतीकों का ज्ञान उपयोगी ही नहीं, अनिवार्य भी है।

प्रतीकों का संसार- हिन्दू समाज में तो हम वास्तव में प्रतीकों का संसार ही लिए चलते हैं। उदाहरण के लिए विवाह के समय वर-कन्या को सात पग साथ-साथ चलाया जाता है। नव वधू का घर पर प्रथम बार स्वागत करते समय दीपों से आरती उतारी जाती है। शिव-मन्दिर में भगवान् का अभिषेक पानी की धार देर तक गिराकर किया जाता है, जल को लुढ़काकर नहीं। भगवान् को बिना सूंघे हुए फूल चढ़ाए जाते हैं। समय-समय पर यज्ञ किए जाते हैं। जनेऊ पहने जाते हैं। चोटी रखी जाती है। हर देवी-देवता के अलग-अलग नाम, रूप, वाहन आदि होते हैं। कलाकृतियों में कमल, गज आदि का बहुत प्रयोग मिलता है। श्रीकृष्ण मुरली बजाते हैं, सरस्वती बीणा बजाती है और भगवान् शिव डमरू बजाते हैं।

हिन्दू प्रतीकों का महत्त्व- इन सब बातों का क्या अर्थ है? क्या ये सब प्राचीन लेखकों या कलाकारों के मनमाने वर्णन या अंकन हैं या इनका सचमुच कुछ अर्थ है?

जैसे ही ये प्रश्न मन में उठते हैं, प्रतीकों के अर्थ मन में स्वयं प्रकट होने लगते हैं। किसी कलाकार, कवि, चिन्तक इत्यादि सांस्कृतिक परम्परा के जानकार से बातचीत होने पर, यह समझने में देर नहीं लगती कि हमारा रचना-संसार, हमारा साहित्य, हमारी चित्रकला, हमारी मूर्तिकला, हमारी स्थापत्य-कला, हमारा सामाजिक जीवन और हमारी धार्मिक क्रियाएँ ऐसे कितने ही प्रतीकों से भरे पड़े हैं जिनके अर्थों का ज्ञान होते ही हमारा मन प्रकाश से भर उठता है, उत्साह से खिल जाता है और आनन्द-सागर में डूब जाता है। गहराई से देखने की दृष्टि मिलते ही हमें सैंकड़ों क्रियाओं और चिह्नों में कितने ही अर्थ दिखाई देने लगते हैं।

अनन्त अर्थों से भरे प्रतीकों को संस्कृति लगातार बनाती रहती है। कभी-कभी तो हजारों वर्षों तक प्रतीकों में नया-नया अर्थ भरा जाता रहता है। सांस्कृतिक प्रतीकों को व्यक्ति नहीं बनाता, जाति बनाती है, धर्म बनाता है, संस्कृति बनाती है। इसी कारण संसार की सबसे प्राचीन और सबसे अधिक विकसित संस्कृति वाली हिन्दू जाति के प्रतीकों का अन्य देशों की तुलना में अपना सौन्दर्य है, अपनी गहराई है और अपना विशेष महत्त्व है।

प्रतीक अथवा संस्कृति के सूत्र- सांस्कृतिक प्रतीकों में अनेक अर्थ इसी प्रकार भरे रहते हैं जैसे शास्त्रों के सिद्धान्त-सूत्रों में। इसलिए हम यह भी कह सकते हैं कि प्रतीक तो हमारी संस्कृति के सूत्र हैं। जैसे सूत्र में अर्थों की संख्या अनन्त भी हो सकती है, उसी प्रकार प्रतीकों के भी नए-नए अर्थ समय-समय पर प्रकट होते रहते हैं।

प्रतीकों के अर्थ-ज्ञान का महत्त्व- प्रतीकों का अर्थ जानना आवश्यक है क्योंकि ऐसा न करने पर हम न अपनी कला को अच्छी तरह समझ पाएँगे, न धर्म को, न साहित्य आदि को और न समाज को अनेक रीतियों व पद्धतियों के रहस्यों को। यदि धर्म के किसी प्रतीक का हमें अर्थ ही ज्ञात न हो, तो हमें उसका सन्देश ही समझ में नहीं आएगा। उदाहरणार्थ-घर में पूजा-पाठ में बनने वाले स्वस्तिक या कमल को हम केवल विशेष डिजाइन समझकर

ही रह जाएँ तो वर्षों तक हम स्वस्तिक या कमल बनाते रहेंगे, ठीक यन्त्रवत्, मशीन के समान। उससे हमारे मन पर स्वस्तिक या कमल से जुड़े किसी विशेष भाव का संस्कार नहीं पड़ेगा। फिर पीढ़ियों तक ऐसी ही स्थिति चलती रहे तो कोई पीढ़ी ऐसी भी आएगी, जो इस परम्परा को सड़ी-गली रूढ़ि मानकर किसी दूसरी डिजाइन को बनाना या कुछ भी न बनाना पसन्द करेगी। अत: प्रतीकों का अर्थ समझना, उन्हें बनाए रखने के लिए भी बहुत आवश्यक है।

भारतीय प्रतीक-विद्या- जिस विद्या के द्वारा हम अपने सांस्कृतिक प्रतीकों का अर्थ समझ सकते हैं, उसे 'भारतीय प्रतीक-विद्या' कहते हैं। भारतीय प्रतीक-विद्या का ज्ञान कलाग्रन्थों, तन्त्रग्रन्थों इत्यादि के अतिरिक्त चिन्तन तथा अनुभूति से भी होता है। इस विद्या की साधना करते-करते ही अनेक प्रतीकों के अर्थ प्रकट होने लगते हैं और सिद्ध हो जाने पर तो ऐसी दृष्टि प्राप्त हो जाती है जिसमें प्रतीकों को अर्थ-ग्रहण करते हुए देखना स्वभाव ही बन जाता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीक 'ॐ'- हमारी संस्कृति के सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीकों में 'ओंकार', 'ओम्' 'प्रणव' प्रमुख है। 'ओम्' को भारत की अधिकांश लिपियों में इस प्रकार लिखा जाता है। सृष्टि की आदि ध्वनि 'ॐ कार' है। यह आज भी सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। इस ध्वनि को 'नाद' कहते हैं, 'शब्द' कहते हैं। इस सृष्टि का अस्तित्व तभी तक है जब तक यह 'नाद' गूँज रहा है, अत: इसे 'नादब्रह्म' 'शब्दब्रह्म' भी कहते हैं। इस नाद को योगी लोग समाधि में अखण्ड रूप से सुनते हैं। चित एकाग्र होने पर सामान्य साधक भी इस अनाहत नाद को सुनते हैं। सन्त-मत में इसको सुनना बड़ी महत्त्वपूर्ण साधना मानी जाती है। कबीर ने इसी का संकेत 'हद छाँड़ि अनहद गया' कहकर किया है। भगवान् श्री कृष्ण ने 'ॐकार' को ही 'एकाक्षर ब्रह्म' कहा है और इसका महत्त्व यह कहकर बताया है कि इसको बोलते हुए तथा भगवान् का स्मरण करते हुए प्राण-त्याग करने वाला 'परम गति' को प्राप्त करता है।

'ॐ' में नाद और बिन्दु- नाद का घनीभूत रूप 'बिन्दु' होता है और 'नादबिन्दु' से सम्पूर्ण विश्व चलता है। 'ॐ' को लिखने की इस पद्धति में नीचे 'नाद' की प्रतीक रूप लहर बनायी जाती है तथा ऊपर 'बिन्दु' बनाया जाता है।

अ, उ, म् के अर्थ- संस्कृत के विद्वानों ने इस एकाक्षर 'ओंकार' में 'अ', 'उ', 'म्' के साथ अव्यक्त अर्धमात्रा को और भी माना है अत: अर्धमात्रा सहित 'ॐ' को 'शब्दब्रह्म' ही नहीं प्रत्यक्ष परब्रह्म के रूप में देखा जाता है। अ, उ, म् अलग-अलग रूप में क्रमश: ब्रह्म, विष्णु और शिव का अर्थ देते हैं और अर्धमात्रा सहित तीनों अक्षर मिलकर 'निराकार ब्रह्म' के वाचक हैं, यह तत्त्व अनेक ग्रन्थों में कहा गया है। इस प्रकार 'ॐ' ब्रह्म का प्रकट रूप भी है। अ, उ, म् के द्वारा तीन अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) तथा अर्धमात्रा के द्वारा चौथी अवस्था (तुरीय) का ज्ञान होता है। इनके द्वारा तीन गुण (सत, रज, तम) का भी ज्ञान होता है। इनसे ही परमात्मा के सत्, चित् और आनन्द रूपों का बोध होता है।

महाशक्ति की पूजा करने वालों की दृष्टि 'ॐ' महाशक्ति का प्रतीक है, वाक् (वाणी) का प्रतीक रूप है, वेद का मूल रूप है तथा सम्पूर्ण ध्वनियों तथा वस्तुओं का विकास इसी आदि ध्वनि से हुआ है।

'ॐ' का उच्चारण- 'ॐ' को अ, उ, म् के कारण 'त्रिमात्र' भी कहा जाता है। प्राचीन विद्वानों के अनुसार त्रिमात्र 'ॐ' त्रिवेद, त्रिगुण, त्रिदेव, त्रिकाम्, त्रि-अवस्था और त्रिकाल का प्रतीक हैं। यह अग्नि, सोम, सूर्य, अत:प्रज्ञा, बहि:प्रज्ञा तथा धन-प्रज्ञा का प्रतीक है-'सभी कर्मों के आरम्भ में 'ॐ' का उच्चारण करना चाहिए' इस प्राचीन आदेश की व्यवस्था के अनुसार हर वेद-मन्त्र का प्रारम्भ 'ॐ' कहकर ही करते हैं। इस उत्तम परम्परा के मूल में दो भाव अवश्य ही रहे हैं-'ॐ' का सब ध्वनियों से बढ़कर महत्त्व तथा इसे भारतीय कभी भूलने न पाएं, यह व्यवस्था।

'ॐ' का महत्त्व- 'ॐ' का महत्त्व सनातन धर्म की सभी भारतीय शाखाओं में समान रूप से देखा जाता है- वैदिक, वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध, सिख, संतमत इत्यादि।

'ॐ' हमारे लिए ब्रह्म का प्रतीक और ब्रह्म-प्राप्ति का साधन भी है। 'ॐ' हमारे लिए सम्पूर्ण विश्व का प्रतीक है और सम्पूर्ण विश्व की सर्वश्रेष्ठ ध्वनि भी है। 'ॐ' हमारे लिए समस्त मन्त्रों के उच्चारण से पहले उच्चरित किया जाने वाला पवित्र शब्द भी है और स्वयं पवित्र मन्त्र भी है। 'ॐ' हमारे लिए विभिन्न साकार देवताओं, देवियों तथा शक्तियों का प्रतीक भी है और योगियों का ध्येय 'निराकार ब्रह्म' भी।

स्वस्तिक- यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वैदिक 'स्वस्ति' (कल्याण) की भावना वाला स्वस्तिक चिह्न ही 'ईसाई क्रास का पूर्वज' है और स्वयं स्वस्तिक 'ॐ' का प्रतीक है। यह विश्व में बहुत लोकप्रिय रहा और भारत में आज भी इसका धार्मिक महत्त्व है।

कमलः हिन्दू संस्कृति का प्रतीक- कमल हमारी संस्कृति का अत्यन्त भव्य प्रतीक है। हमारी संस्कृति में कमल की सुगन्ध आती है, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है। हमारे साहित्य में नेत्र, मुख, हाथ, पैर इत्यादि की उपमा कमल से प्रायः दी गयी है। पूजा में कमल सर्वोत्तम पुष्प माना गया है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि भारत द्वीप समूह इत्यादि में आज भी कमलों की अधिकता है, परन्तु भारत में कमल बहुत खोजने पर ही मिल पाते हैं।

कमल पानी में रहकर भी भीगता नहीं, इसलिए वह अनासक्ति का प्रतीक है। वह कीचड़ में जन्म लेकर भी सुन्दर बना रहता है, मैला नहीं होता, इसीलिए वह अलिप्तता, उज्ज्वलता तथा निर्मलता का प्रतीक है। सूर्य की किरणों से वह खिलता है और सूर्य के अस्त होते ही वह भी मुंद जाता है। इसीलिए वह प्रकाश की उपासना का प्रतीक है। अनासक्ति, अलिप्तता, निर्मलता, प्रकाशोपासना आदि के कारण ही कमल भारतीय संस्कृति का प्रतीक बन गया है।

कमल में सैंकड़ों पंखुड़ियाँ होती हैं। हमारी संस्कृति में भी कितने ही मत-मतान्तर, कितने ही सम्प्रदाय कितनी ही उपजातियाँ, कितनी ही भाषाएँ व बोलियाँ, कितनी ही रीतियाँ आदि हैं। अतः हमारी संस्कृति भी एक सहस्त्रदल कमल है, अनन्त पंखुड़ियों वाला कमल। कमल अपने पास आने वाले भ्रमरों को अपना मधु प्रदान करता है और भ्रमर कमल की प्रशंसा के गीत गाते हैं। ठीक ऐसे ही भारतीय संस्कृति भी विदेशी ज्ञान-पिपासुओं को, धर्म के जिज्ञासुओं को, आश्रय के इच्छुकों को, उनका मनचाहा मधु देती है, पर बिना किसी स्वार्थ भाव के। वे विदेशी (ह्वेनसांग, फाहियान आदि) उसका जयगान करते हैं, परन्तु भारतीय संस्कृति आत्मप्रशंसा को अच्छा नहीं मानती। कमल को इसी कारण भारतीय संस्कृति, कला में, साहित्य में, आदरपूर्ण स्थान मिला है। संस्कृति में, धर्म में कमल देवताओं का आसन है, जिस पर ब्रह्मा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि विराजमान है। भारतीय स्थापत्यकला के एक विदेशी मर्मज्ञ श्री ई.वी. हैवेल ने ठीक ही लिखा है- 'कमल देवताओं का आसन और पादपीठ था, जो जड़ जगत् और उच्च लोकों का प्रतीक है। यह सारे हिन्दू धर्म का उसी प्रकार प्रतीक था जैसे इस्लाम के लिये मेहराव।' इसी कारण विश्व में जहाँ कहीं भी स्थापत्य कला में कमल का अंकन मिलता है, वहाँ कभी हिन्दू जाति का प्रभाव रहा था, यह अनिवार्यतः मान लेना पड़ता है। वर्तमान रूस के अनेक स्थलों की प्राचीन मूर्तियों में कमलासन पर विराजमान देवी-देवता भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।

कमल और कलश- कलश का भी कमल के समान ही भारतीय स्थापत्त्य कला में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। ई. वी. हैवेल के ये शब्द महत्त्वपूर्ण हैं-

"कमल के प्रतीक के साथ लोटा, कलश या कुंभ का निकट सम्बन्ध रहा है, जिसमें सृष्टि-तत्त्व अर्थात् अमृत भरा हुआ है। भारत के गृह-निर्माण और कला, निर्माण और सजावट में असंख्य रीति से इन दोनों प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। खिला हुआ कमल सूर्य के प्रतीक की तरह भरहुत, साँची और अमरावती के बौद्ध घेरों पर बनाए गए हैं, जिसे 'घोड़े के नाल जैसा महराब' कहा गया है और जो झुकाए हुए बाँस से बनाए जाते हैं तथा बौद्ध गृहों के छज्जों के पास और झरोखों में पाए जाते हैं, वे भी कमल-दल के प्रतीक हैं। बौद्ध व हिन्दू गुम्बज की रचना भी बाँस के अनुकरण पर होती थी और उसमें पुष्कर का अनुकरण किया जाता था। यह कमल की पंखुड़ियों के साथ पत्थरों पर अंकित किया जाता था। अधिकांश हिन्दू-मन्दिरों के स्तम्भों की रचना कमल, पुष्कर और कलश को मिलाकर की जाती थी।"

चोटी और जनेऊ- शिखा (अर्थात् चोटी) और यज्ञोपवीत (अर्थात् जनेऊ) हमारे कालजयी प्रतीक हैं। औरंगजेब ने प्रतिदिन सहस्रों चोटी और जनेऊ कटवाकर हिन्दू जाति को नष्ट करना चाहा, किन्तु वह थककर मर भी गया, हिन्दू जाति जीवित बनी रही। (दुर्भाग्य की बात है कि वर्तमान काल में नास्तिकता तथा फैशन के पश्चिमी प्रभाव से इन दोनों की ही हिन्दू समाज में तेजी से कमी होती जा रही है।) इसका कारण यही है कि जो जाति अपने प्रिय प्रतीकों की रक्षा करती है, वह जाति जीवित रहती है और प्रगति करती है। जनेऊ द्विज का लक्षण है। द्विज अर्थात् जिसका दूसरा जन्म (साधारण जन्म के बाद गुरु-गृह में शिक्षा आदि का संस्कार ग्रहण करने का जन्म) हो चुका है। इसके तीन धागे हमारे तीन ऋणों के प्रतीक होते हैं। इसका गोल आकार है जो त्रिगुणात्मक प्रकृति का और 'ऊँकार' का प्रतीक है यह ब्रह्मचर्य काल में धारण किया जाता है और शेष तीनों आश्रमों का स्मरण कराता है यह शूद्रत्त्व से ऊपर उठकर तीन वर्णों में से किसी एक में रहने का प्रतीक है। जो यज्ञोपवीत नहीं पहनता वह शूद्र है और जो शूद्र है वह शिक्षा आदि लेने के लिए यज्ञोपवीत धारण करे-यही हमारी संस्कृति का सन्देश है। अर्थात् शूद्र कोई न रहे-यही हिन्दू संस्कृति का लक्ष्य है।

शिखा ब्रह्मरन्ध्र का प्रतीक है, सहस्रदल कमल का प्रतीक है। उत्तमांग सिर के ऊपर पताका के समान स्थित शिखा हमारी संस्कृति में बुद्धि के श्रेष्ठ महत्त्व की भी प्रतीक है। साधन द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को सहस्रारचक्र तक ले जाता है, इस साध्य का स्मरण भी शिखा कराती है।

विश्व में बिखरे हुए हिन्दू सांस्कृतिक प्रतीक- इतिहास का यह एक रोचक तथ्य है कि हिन्दू सांस्कृतिक प्रतीक विश्व भर में व्याप्त हुए और आज भी यत्र-तत्र बिखरे हुए प्रचुरता से मिलते हैं। गजनी में शिवलिंगाकार स्तम्भ पाए गए हैं। मोहनजोदड़ों से प्राप्त सामग्री में स्वस्तिक, पशुपति मूर्ति, वृषभ, त्रिशूल इत्यादि मिले हैं। महमूद गजनवी (जिसने सोमनाथ पर आक्रमण किया था) की कब्र पर एक चक्र बना हुआ है जो 'मूलाधार चक्र' ही है। ईसाई समाज में 'वन्दित चक्र' ईसा के समय से पहले ही लोकवन्दित था क्योंकि वह 'स्वस्तिक' का एक संस्करण मात्र था। अनेक शैव-वैष्णव प्रतीक मिस्र व पश्चिम एशियायी देशों तथा अरब में प्रचलित रहे हैं। यथा-तिलक, चोटी इत्यादि। कहा गया है कि अरब में मक्का की विशेष मस्जिद की स्थापत्यकला भारतीय स्थापत्यकला के सदृश है। इसका अर्थ यह हुआ कि मन्दिरों की प्रतीकात्मकता को भी कभी अरब में सद्भाव से ग्रहण किया गया था। कहा जाता है कि कैथोलिक चर्च की मूर्तिपूजा के अनेक प्रतीक भी भारतीय वैष्णव मूर्तिपूजा के प्रतीकों का ही संस्करण मात्र हैं। इन सब बातों को देख, पढ़ या सुनकर मन में यह स्वाभाविक इच्छा होती है अथवा होनी चाहिए कि सत्य की खोज के लिये ऐसे सभी तथ्यों को निष्पक्ष भाव से प्रकाशित करने में 'यूनेस्को' जैसे विश्व संगठन आगे आएँ और विद्वान् इन तथ्यों से विश्व-इतिहास इत्यादि के आधार पर समुचित निष्कर्ष निकालें। भारतीय संस्कृति को भी इसमें गौरव मिलेगा, अतः भारत सरकार का तथा भारतीय विद्वानों का भी इसमें विशेष कर्त्तव्य बनता है। विदेशों में जाने वाले सभी-शासकीय अथवा अन्य-भारतीय पर्यटकों की जागरुकता तथा खुली दृष्टि इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत कर सकती है।

इस प्रकार हिन्दू सांस्कृतिक प्रतीकों का राष्ट्र व विश्व के लिए अपरिमित महत्त्व है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

'जन-ज्ञान' मासिक से साभार....

उत्तम संन्यासी की व्यवस्था श्रेष्ठ धर्म है

यदि एक अकेला वेदों का जाननेहारा द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म (कर्त्तव्य कर्म) की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों लाखों करोड़ों मिल के जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिए। जो अविद्यायुक्त मूर्खों के कहे कर्म के अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं।

(स. प्र. स. ६)

ऐ रसोई बता....

पं. रामनिवास 'गुणग्राहक'

ऐ रसोई बता उस समय की कथा, जब ऋषिवर यहाँ पर थे आये हुए।
तुझको होगी खुशी मेरे प्यारे ऋषि, खाते भोजन यहाँ के पकाये हुए।।
वह ऋषि देश का, धर्म का, जाति का, पूर्ण उपकार दिन-रात करता रहा।
ऐसे पुण्यात्मा की क्षुधा-शान्ति को, थाल जाते यहाँ से सजाये हुए।

ऐ रसोई बता उस समय की कथा...

नारी जाति का उद्धार उसने किया, वेद पढ़ने का अधिकार सबको दिया।
धर्म को झूठ-पाखण्ड से मुक्त कर, दे के संस्कार निर्माण नर का किया।
नींव स्वाधीनता की ऋषि ने रखी, ग्रन्थ अनमोल उनके बनाये हुए...

ऐ रसोई बता उस समय की कथा...

गो-कृषि रक्षिणी भी बनाई सभा, दूध और अन्न भरपूर हो देश में।
ज्ञान जीवन में दिखता था उनके वही, जो वो देते थे जनता को उपदेश में।।
विद्या साकार थी जिनके व्यवहार में, और वह थे प्रभु में समाये हुए....

ऐ रसोई बता उस समय की कथा...

देव-इच्छित गुणों के वो आगार थे, धर्म का रूप मानो वो साकार थे।
ऐसे मानव की अन्तिम रसोई है तू, जो किसी के न किंचित गुनहगार थे।।
उनके जीवन में सर्वत्र और सर्वदा, रहती पावनता डेरा लगाये हुए...

ऐ रसोई बता उस समय की कथा...

अब तनिक पूछ लें तुझसे कुछ प्रश्न भी, दे बता तूने हमसे क्या बदला लिया।
जबकि ढंग से उषाकाल तक न हुआ, ज्ञान-भानु को क्योंकर विदा कर दिया।।
ऐसा निष्ठुर हृदय हो गया क्यों तेरा, वो थे पहले ही सबके सताये हुए...

ऐ रसोई बता उस समय की कथा...

होती अभिषिक्त तू आज अभिशप्त है, तेरे कारण जगत सारा संतप्त है।
मानवी-बुद्धि में भ्रान्तियाँ शेष हैं, ज्ञान की वो पिपासा कहाँ तृप्त है।।
आज भी तो यहाँ कण्टकाकीर्ण हैं, रास्ते सब ऋषि के दिखाये हुए...

ऐ रसोई बता उस समय की कथा...

ऐ कवि तू है भोला या है तू कुटिल, ऐसे आरोप मुझ पर लगाता है क्यों?
जड़ रसोई है दोषी तेरी दृष्टि में, चेतनाशील नर को बचाता है क्यों?
विश्व-इतिहास देता है साक्षी यही, ये हैं सब खेल नर के रचाये हुए....

ऐ रसोई बता उस समय की कथा...

प्रश्न है मानवों से रसोई का ये, उस ऋषि ने तुम्हारा बिगाड़ा था क्या?
वह लड़ा पाप से पापियों से नहीं, घर किसी का ऋषि ने उजाड़ा था क्या??
फिर कहो क्यों उन्हें मारने के लिए, घूमते थे बहुत तिलमिलाये हुए...

ऐ रसोई बता उस समय की कथा...

दूध में दुष्ट ने जब मिलाया गरल, मैंने देखा तो मेरा हृदय फट गया।
दुष्ट मानव, असुर और पिशाचादि में, अपने कर्मों के कारण मनुज बँट गया।।
प्राण लेता है यह प्राण देता भी है, गुण विलक्षण हृदय में बसाये हुए...

ऐ रसोई बता उस समय की कथा...

मानवो! आँख खोलो टटोलो हृदय, कौन आएगा तुमको बचाने भला।
बदला उपकारों का घात-प्रतिघात से, देने का रोक दो ये बुरा सिलसिला।।
नाश की बेल है छोड़ दो अब इसे, बात हित की हृदय में लगाये हुए...

ऐ रसोई बता उस समय की कथा...

(उसी रसोई में बैठकर लिखी गई रचना)

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?

तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

परोपकारिणी सभा में आयुर्वेदिक चिकित्सक की आवश्यकता

सभा द्वारा संचालित आयुर्वेदिक चिकित्सालय के लिये योग्य आयुर्वेदिक चिकित्सक की आवश्यकता है। चिकित्सालय में सेवा देने का समय प्रतिदिन २ घण्टे है। आवास, भोजन आदि की व्यवस्था सभी की ओर से ही होगी।

सम्पर्क- ०१४५-२६२१२७०, ९४६०४२११८३

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से १५ जून २०१९ तक)

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट २. श्री हरिराम, यमुनानगर ३. श्री सत्यनारायण व श्रीमती आशा शर्मा, अजमेर ४. श्री राजूराम, घड़साना, श्रीगंगानगर ५. श्रीमती कमला यादव, बीकानेर ६. श्री जेठूसिंह यादव, बीकानेर ७. श्री जे. एस. सामन्त, हलद्वानी।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(०१ से १५ जून २०१९ तक)

१. श्री हरसहाय सिंह आर्य, डबोरा, बरेली २. श्री माणिकचन्द जैन, छोटी खाटु ३. श्री सन्दीप तँवर, अजमेर ४. डॉ. सन्जना शर्मा, अजमेर ५. श्री जे.एस. सामन्त, हलद्वानी ६. श्रीमती पद्मा गुप्ता, पुणे ७. श्रीमती शिखा गुप्ता, पुणे ८. श्री विनोद गुप्ता, पुणे ९. श्री प्रतीक गुप्ता, पुणे १०. श्रीमती प्रियंका गुप्ता, पुणे ११. श्री प्रणव गुप्ता, पुणे १२. श्रीमती पुष्पलता उपाध्याय, अजमेर १३. श्री रामेश्वरलाल आर्य, बीकानेर १४. श्री रवीन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ, बीकानेर १५. श्री नन्दा जाट (फौजी), नसीराबाद।

अन्न संग्रह (दानदाता)

१. चौधरी मनसाराम, हनुमानगढ़ २. श्री गिरधारीलाल गोदारा, रावतसर ३. श्री हरिदत्त, रावतसर ४. आर्यसमाज मन्दिर, हनुमानगढ़ ५. श्री ब्रजलाल भाकर व श्रीमती राजेश्वरी भाकर, श्रीगंगानगर ६. श्री आनन्दमोहन शर्मा, हनुमानगढ़ ७. श्री सत्यदेव, हनुमानगढ़ ८. श्री रविप्रकाश, श्रीगंगानगर ९. श्री अजय चढ्ढा, श्रीगंगानगर १०. श्री शुद्धबोध, श्रीगंगानगर ११. श्रीमती राजरानी सहगल, श्रीगंगानगर १२. श्री लालचन्द यादव व श्रीमती विमला यादव, मन्नीवाली, श्रीगंगानगर १३. डॉ. हनुमानप्रसाद आर्य, श्रीगंगानगर १४. मै. लायलपुर बर्तन भण्डार, श्रीगंगानगर १५. श्री रामनिवास गोयल, श्रीगंगानगर १६. श्री सोहनलाल सिंगारिया, श्रीगंगानगर १७. श्री रामलाल, श्रीगंगानगर १८. श्री वेदपालगिरि, श्रीगंगानगर १९. श्री देवेन्द्रपाल महाजन, श्रीगंगानगर २०. स्त्री आर्यसमाज, आदर्शनगर, श्रीगंगानगर २१. श्री नीतिमित्र आर्य, श्रीगंगानगर २२. श्री हर्षवर्धन शास्त्री, श्रीगंगानगर २३. श्री दक्षवीर कोहली, श्रीगंगानगर २४. श्री महेश कुमार ठक्कर, श्रीगंगानगर २५. श्री गोपीराम गोपाल चेरिटेबिल ट्रस्ट, श्रीगंगानगर २६. श्री राजेन्द्रप्रसाद शर्मा, श्रीगंगानगर २७. श्री दयाराम, श्रीगंगानगर २८. श्री वैद्य कान्हाराम, श्रीगंगानगर २९. श्री धजाराम जयदेव, श्रीगंगानगर ३०. मै. श्रीश्याम रोड लिंक प्रा. लि., सिलीगुड़ी ३१. श्री विजय कुमार, पदमपुर ३२. श्री किशन सिंह दुग्गल, घड़साना ३३. श्री विजय कुमार गोदारा, घड़साना, श्रीगंगानगर ३४. आर्यसमाज रायसिंहनगर, श्रीगंगानगर ३५. श्री प्रेमनारायण लेघा, घड़साना, श्रीगंगानगर ३६. श्री राजूराम, घड़साना, श्रीगंगानगर ३७. श्री चन्द्रभान लेघा, घड़साना, श्रीगंगानगर ३८. श्री राधेश्याम आर्य, बीकानेर ३९. श्री रवीन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ, बीकानेर ४०. श्रीमती कमला यादव, बीकानेर ४१. श्री नारायण सोनी, नोखा ४२. आर्यसमाज कुचेरा, नागौर ४३. श्रीमती प्रिया बांगड़, भीलवाड़ा ४४. श्रीमती चम्पा देवी, अजमेर ४५. श्री टीकमचन्द बाहेती, निम्बाहेड़ा ४६. श्री रवीन्द्र साहू, निम्बाहेड़ा ४७. श्री भारत आर्य, निम्बाहेड़ा ४८. मै. अंजना पम्प सर्विसेज, निम्बाहेड़ा ४९. श्री मोहनलाल, निम्बाहेड़ा ५०. श्री शोभालाल, निम्बाहेड़ा ५१. श्री हीरालाल बासेड़ा ५२. श्रीमती माँगीबाई, प्रतापगढ़ ५३. श्री छगनलाल, बासेड़ा, प्रतापगढ़ ५४. श्री ओमप्रकाश आंजना, बासेड़ा,

प्रतापगढ़ ५५. श्री राजमल आंजना, बासेड़ा, प्रतापगढ़ ५६. श्री कमल आंजना, बासेड़ा, प्रतापगढ़ ५७. श्री चर्तुभुज, बासेड़ा, प्रतापगढ़ ५८. श्री कारूलाल, बासेड़ा, प्रतापगढ़ ५९. श्री उदयलाल आंजना, बासेड़ा, प्रतापगढ़ ६०. श्री जगदीश पाटीदार, खेड़ी ६१. श्री ताराचन्द, खेड़ी ६२. श्री कँवरलाल, खेड़ी ६३. श्री लक्ष्मीचन्द, खेड़ी ६४. श्री नेतराम पाटीदार, खेड़ी ६५. श्री शम्भुलाल ओंकारलाल पाटीदार, खेड़ी ६६. श्री मोहनलाल प्रभुलाल, खेड़ी ६७. श्री भैरूलाल बाबूलाल, खेड़ी ६८. श्री अम्बालाल पाटीदार, जीवनपुरा ६९. श्री पृथ्वीराज पाटीदार, जीवनपुरा ७०. श्री नरेश पाटीदार, छोटी सादड़ी ७१. श्री गोपाललाल तेली, गोमाना, प्रतापगढ़ ७२. श्री आशाराम साहू, छोटी सादड़ी ७३. श्री किशनलाल आंजना, छोटी सादड़ी ७४. श्री जगदीश आंजना, प्रतापगढ़ ७५. श्री देवीसिंह आंजना, गोमाना ७६. श्री देवीलाल पाटीदार, गोमाना ७७. श्री आशाराम उस्ताद, छोटी सादड़ी ७८. श्री जमनालाल, छोटी सादड़ी ७९. डॉ. पुष्पेन्द्र उपाध्याय, प्रतापगढ़ ८०. पं. काशीराम, छोटी सादड़ी ८१. श्री प्यारचन्द साहू, छोटी सादड़ी ८२. श्री हीरालाल शर्मा, छोटी सादड़ी ८३. श्री उदयराम, छोटी सादड़ी ८४. श्री करणमल साहू, छोटी सादड़ी ८५. श्री रामरथ आर्य, छोटी सादड़ी ८६. श्री चाँदमल, छोटी सादड़ी, प्रतापगढ़ ८७. श्री श्यामप्रसाद छोटी सादड़ी ८८. श्री ओमप्रकाश नन्दलाल साहू, छोटी सादड़ी, प्रतापगढ़ ८९. श्री श्यामसुन्दर अग्रवाल, छोटी सादड़ी, प्रतापगढ़ ९०. श्री रामविलास साहू, प्रतापगढ़ ९१. श्री मार्तंड राव मराठा, छोटी सादड़ी ९२. श्रीमती प्रेमलता दौलतराम, छोटी सादड़ी ९३. श्री अरविन्द कुमार, छोटी सादड़ी ९४. श्री हीरालाल पाटीदार, छोटी सादड़ी, प्रतापगढ़ ९५. श्री अशोककुमार भूरालाल, प्रतापगढ़ ९६. श्री चाँदमल साहू, प्रतापगढ़ ९७. श्री शान्तिलाल शर्मा, प्रतापगढ़ ९८. मै. आंजना सेल्स एजेन्सीज, छोटी सादड़ी, प्रतापगढ़ ९९. श्री हीरालाल अचलपुर, प्रतापगढ़ १००. श्री राजाराम पाटीदार, गोमाना १०१. श्री दशरथ, मरजीवी १०२. सरपंच रामलाल, मरजीवी १०३. आर्यसमाज, विजयनगर, अजमेर १०४. श्रीमती अन्जु गर्ग, मदनगंज, किशनगढ़ १०५. श्री राजाराम त्यागी, रुड़की, हरिद्वार १०६. मै. स्वस्तिकॉम चेरिटेबिल ट्रस्ट, अमरावती १०७. श्री कृष्णकुमार शर्मा, नीमराना, अलवर १०८. श्रीमती पुष्पलता उपाध्याय, अजमेर १०९. श्री विपिन व श्रीमती कीर्ति लखोटिया, बैंगलौर ११०. श्री करण बेदी, अजमेर १११. श्री कैलाशचन्द पटवारी, भटयाणी ११२. श्री कालूराज भटयाणी, नसीराबाद ११३. श्री घीसा वैष्णव, भटयाणी, नसीराबाद।

वैदिक पुस्तकालय अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

१. कुल्लियाते आर्य मुसाफिर (पं. लेखराम ग्रन्थ संग्रह)- दो भाग

लेखक- पण्डित लेखराम

सम्पादक- प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर, पंजाब

मूल्य- रुपये ~~९००~~/- **छूट पर-** ६००/-

२. महर्षि दयानन्द का पत्र-व्यवहार (दो भाग में)

मूल्य - रुपये ~~८००~~/- **छूट पर - ५००/-**

३. अष्टाध्यायी भाष्य- ३ भाग (१ सैट)

भाष्यकार- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- रुपये ~~५००~~/- **छूट पर-** ३५०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

आर्यजगत् के समाचार

१. प्रवेश प्रारम्भ- गुरु विरजानन्द गुरुकुल, इन्दौर, म.प्र. में आर्ष पाठविधि से कक्षा ४ उत्तीर्ण बालकों के लिये प्रवेश प्रारम्भ है। जो अभिभावक वैदिक संस्कृति, वेद, यज्ञ, योग एवं संस्कारयुक्त शिक्षा दिलाना चाहते हैं, वे शीघ्र सम्पर्क करें। स्थान सीमित। नि:शुल्क शिक्षा, भोजन व आवास की व्यवस्था। **विशेषताएँ**- आर्ष पाठविधि, संस्कृत सम्भाषण एवं इंग्लिश स्पोकन, सस्वर वेदपाठ शिक्षा, कम्प्यूटर ज्ञान, योगाभ्यास एवं शारीरिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। सम्पर्क- ९९७७९८७७७७, ९९७७९६७७७७

२. प्रवेश प्रारम्भ- वैदिक उपदेशक विद्यालय लखनऊ में द्वितीय सत्र के लिए विद्यार्थी आवेदन कर सकते हैं। आवेदक की न्यूनतम अर्हताएँ निम्न प्रकार हैं- न्यूनतम आयु १५ वर्ष, अधिकतम आयु-सीमा नहीं है, हाई स्कूल उत्तीर्ण होना चाहिए, शरीर स्वस्थ और नीरोग हो, संयमी, चरित्रवान् और सदाचारी हो, वेद का विद्वान् एवं प्रचारक बनना चाहे अथवा पौरोहित्य, योग-प्रशिक्षण एवं आर्य-संगठन में जीवन लगाना चाहे। अध्यापन के विषय- संस्कृत व्याकरण, भारतीय दर्शन, वेद उपनिषद् सहित, ऋषि दयानन्द, योग। सम्पर्क- वैदिक उपदेशक विद्यालय, १३९३, एल्डिको उद्यान-२, रायबरेली रोड, लखनऊ, उ.प्र.। मो.-९८३९१८१६९०

३. यज्ञ सम्पन्न- श्री मुकेश माहेश्वरी की २५वीं वैवाहिक वर्षगांठ एवं उनके सुपुत्र श्री मनु माहेश्वरी की राजस्थान सरकार में संस्कृत विभाग में अध्यापक पद पर नियुक्ति होने की खुशी में अजमेर में महाराणा प्रतापनगर ए-१८९, पर दिनांक १८ से २४ मई तक यज्ञ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। यज्ञ के ब्रह्मा डॉ. सोमदेव शास्त्री, मुम्बई रहे। वेदपाठी ब्रह्मचारी धुरन्धर व आनन्द आर्ष गुरुकुल होशंगाबाद थे। इस यज्ञ में लगभग ५०० व्यक्तियों की भागीदारी रही।

४. सुविधा- आर्यसमाज शक्ति नगर, अमृतसर शहर में पधारने वाले सभी आर्यजनों को सहर्ष सूचित किया जाता है कि उनके ठहरने हेतु आर्यसमाज के प्रांगण में खुले, हवादार, साफ-सुथरे तथा सुरक्षित हॉल-कमरे जिनमें रसोई तथा बाथरूम अटैच है, यात्रियों की सुविधा के लिए उपलब्ध है। आर्यजनों को यह भी सूचित किया जाता है कि आर्यसमाज शक्ति नगर, अमृतसर के प्रांगण में प्रतिदिन प्रात: और सायंकाल हवन यज्ञ भी होता है। कृपया आप अपना पहचान पत्र (आधार कार्ड) तथा सम्बन्धित आर्यसमाज के सक्षम अधिकारी का पत्र अपने साथ अवश्य लावें। **सम्पर्क- ०१८३-२५३०८२०**

५. सावरकर जयन्ती मनाई- आर्यसमाज शृंगारनगर, लखनऊ, उ.प्र. में प्रधान डॉ. रूपचन्द्र दीपक की अध्यक्षता में दि. २८ मई २०१९ को स्वातन्त्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर की जयन्ती पर एक गोष्ठी आयोजित की गई। श्री सुशील कुमार श्रीवास्तव ने प्रतिवर्ष जयन्ती मनाने का संकल्प धारण कराया।

६. शिविर सम्पन्न- आर्यवीर दल मुम्बई द्वारा आयोजित आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई के संरक्षण एवं आर्यसमाज वाशी के विशेष सहयोग से दि. १२ से १९ मई २०१९ तक आठ दिवसीय आदर्श जीवन निर्माण शिविर आदिवासी विभाग शासकीय माध्यमिक व उच्च माध्यमिक कन्या आश्रम शाला, शेंणवा (कुल्है) ता. शहापूर, जि. ठाणे में आयोजित किया गया। जिसमें लगभग ४० बच्चों ने भाग लिया। शिविर का संचालन आचार्य नरेन्द्र शास्त्री संचालक आर्यवीर दल मुम्बई ने किया।

७. देहदान- आर्यसमाज शिवाजी नगर, गुरुग्राम, हरियाणा के प्रधान श्री वीरेन्द्र सोतिया ने अपनी माता श्रीमती सरस्वती देवी सोतिया की मौखिक वसीयत के अनुसार देहदान किया। गुरुग्राम में यह कार्य पिछले वर्ष से श्री कन्हैयालाल आर्य की माता श्रीमती जमनादेवी आर्या के देहादान से प्रारम्भ हुआ था। तत्पश्चात् श्रीमती चन्द्रकान्ता आर्या, श्री जयदेव हसीजा एवं अब माता श्रीमती सरस्वती देवी सोतिया का देहादान हुआ। इस पवित्र कार्य में सहयोग हेतु परोपकारिणी सभा अजमेर श्री वीरेन्द्र सोतिया के इस अपूर्व साहस के लिए साधुवाद देती है।

वैवाहिक समाचार

८. वधु चाहिए- आर्य परिवार, संस्कारित, जन्मतिथि- ०५.०४.१९८१, कद-५ फुट २ इंच, शिक्षा- पी.एचडी., युवक हेतु आर्य परिवार की सुशिक्षित एवं संस्कारी युवती चाहिए। **सम्पर्क- ८२८७७६६०४०**

ग्रीष्मकालीन योग साधना शिविर-२०१९

परोपकारिणी सभा प्रतिवर्ष कई शिविरों का आयोजन करती है। इन शिविरों का उद्देश्य समाज में वैदिक सिद्धान्तों व अध्यात्म का प्रचार-प्रसार करना है। युवक व युवतियों के अलग-अलग चरित्र निर्माण शिविरों के पश्चात् साधक-साधिकाओं व अध्यात्म में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिये दिनांक १६ से २३ जून तक योग-साधना शिविर का आयोजन किया गया। शिविर के संयोजक परोपकारिणी सभा के संयुक्त मन्त्री डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा रहे।

इस शिविर में विभिन्न प्रान्तों से आये लगभग ९० शिविरार्थियों ने भाग लिया। ऋषि उद्यान का परिसर स्वयं में ही शान्त व सुरम्य है, उस पर आवास आदि की उत्तम व्यवस्थाओं ने इस वातावरण को और अधिक आध्यात्मिक बना दिया। शिविर की व्यवस्थाओं में श्री वासुदेव आर्य, श्री सुरेन्द्र आर्य, श्री हिम्मतसिंह आदि ने अहर्निश परिश्रम किया। सभा के प्रधान डॉ. वेदपाल जी ने शिक्षक व सभाधिकारी होने के साथ-साथ एक कुशल व्यवस्थापक के रूप में कई भूमिकाएँ निभाईं। मन्त्री श्री कन्हैयालाल आर्य ने पूरे शिविर में हर छोटी-बड़ी व्यवस्था में पूर्ण पुरुषार्थ से कार्यकर्त्ताओं का मार्गदर्शन किया। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण यह शिविर विशेष बन गया।

कक्षाओं का निर्धारण, विषयों का चयन, दिनचर्या का सूक्ष्म निर्धारण, विषयानुरूप विद्वानों का चयन आदि से शिविरार्थियों के लिये यह शिविर अधिकाधिक उपयोगी बन गया। अध्यात्म को परिपूर्ण करने के लिये 'ध्यान', 'योगदर्शन', 'ज्ञान-कर्म-उपासना', 'शंका-समाधान', 'संध्या के मन्त्रों का अर्थ', 'आत्मनिरीक्षण' आदि विषयों की कक्षाओं को रखा गया। प्रातः-सायं ध्यान के प्रायोगिक अभ्यास के लिये १-१ घण्टे का निर्धारण किया गया। आमन्त्रित विद्वानों ने अध्यात्म से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्यापन किया।

शिविर में ध्यान का अभ्यास स्वामी केवलानन्द सरस्वती, योग-दर्शन का अध्यापन आचार्य संदीप, ज्ञान-कर्म-उपासना एवं आत्मनिरीक्षण आचार्य चन्द्रेश, शंका-समाधान डॉ. वेदपाल, संध्या के मन्त्रों का अर्थ पं. रामनिवास 'गुणग्राहक' एवं श्लोक भ्रमण श्री सोमेश 'पाठक' आदि द्वारा कराया गया। कक्षाओं के साथ-साथ प्रतिदिन प्रातः यज्ञोपरान्त वेद एवं वैदिक सिद्धान्तों से युक्त व्याख्यान भी होते रहे, जिसमें उपरोक्त विद्वानों के अतिरिक्त ऋषि उद्यान गुरुकुल के आचार्य विद्यादेव, आचार्य घनश्याम सिंह आर्य एवं सभासद् डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी' ने अपने सारगर्भित विचार प्रकट किये।

इस शिविर में आत्मिक उन्नति के साथ शारीरिक उन्नति को भी पर्याप्त महत्त्व दिया गया। इसके लिये नित्य प्रातः आसन प्राणायाम की कक्षा आयोजित होती थी। व्यायाम का कार्यभार आर्यवीर सुशील आर्य ने दक्षतापूर्वक वहन किया। समापन सत्र में शिविरार्थियों में से डॉ. रमनभाई मिस्त्री मुम्बई, श्री विजयपाल सिंह मुजफ्फरगर, श्री नरेश कुमार गुप्ता कोलकाता, श्री बलवानसिंह, मा. कपूर मुनि, श्रीमती रश्मिप्रभा, श्रीमती सुधा ठाकुर, श्रीमती पद्मावती ने शिविर से सम्बन्धित अपने अनुभव सुनाए एवं उपस्थित आचार्यगण से आशीर्वाद प्राप्त किया। समापन सत्र का संयोजन सभामन्त्री श्री कन्हैयालाल आर्य ने किया।

इस प्रकार यह शिविर सभी अधिकारियों, विद्वानों, कार्यकत्ताओं व शिविरार्थियों के सहयोग व सामंजस्य से सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

संन्यासी का विशेष धर्म

दश लक्षण युक्त (घृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध) पक्षपात रहित नयायाचरण, धर्म में सदा आप चलना और दूसरों को समझाकर चलाना संन्यासी का विशेष धर्म है। संन्यासियों का मुख्य कर्म यही है कि सब गृहस्थादि आश्रमों को सब प्रकार के व्यवहारों का सत्य निश्चय करा, अधर्म व्यवहारों से छुड़ा सब संशयों का छेदन कर, सत्य धर्म युक्त व्यवहारों में प्रवृत्त कराया करें।

(स. प्र. स. ५)